Chapter-4

अध्याय ४

विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास

हिन्दी और गुजराती के विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास :

प्रथम अध्याय में हम निर्दिष्ट कर चुके हैं कि विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास में निम्नांकित विशेषताओं का होना नितान्त रूप से आवश्यक है ।

(१) इसका कथानक प्रामाणिक इतिहास से ग्रहण किया गया हो,

(२) इसके प्रायः सभी पात्र ऐतिहासिक हों और उनके नाम तथा चरित्र भी इतिहास सम्मत हों ।

तथा

(३) उन्हें अपने युगानुरूप विशुद्ध ऐतिहासिक वातावरण की पृष्ठभूमि में कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया गया हो ।

इससे स्पष्ट है कि ऐतिहासिक उपन्यास प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्यों एवं औपन्यासिक कलात्मकता से युक्त होने के कारण अपने समय के ऐतिहासिक पक्ष को एक जीवन्त एवं रंजनात्मक स्वरूप में प्रस्तुत करता है । ऐसी रचना इतिहास और कला दोनों दृष्टियों से सुसम्मानित होती है । किन्तु यहाँ यह भी ध्यान रखने योग्य है कि विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास-पक्ष की प्रामाणिकता और प्रधानता के आग्रह के परिणाम स्वरूप इतिहास ही कृति में सर्वत्र हावी हो सकता है । इससे एक ओर कृति में जहाँ नीरसता उभर आती है, वहाँ दूसरी ओर वह जीवनी की स्थिति को प्राप्त होने लगता है । अतः जागरूक कलाकार सदैव अपनी रचना में इतिहास और कला दोनों का सन्तुलन बनाये रखते हैं ।

इस प्रकार इतिहास और कला दोनों दृष्टियों से सन्तुलित

विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम दृष्टिगत होते हैं। हिन्दी और गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासों का अनुशीलन करने पर इस तथ्य की स्पष्टतया प्रतीति हो जाती है, दोनों में दो-तीन कृतियां ही इस दिशा में उल्लेख्य हैं। इनकी अल्प संख्या का मूल कारण है इतिहास और कल्पना के संयोजन की दुःसाध्य प्रक्रिया। ऐतिहासिक उपन्यास में उसका सम्पूर्ण निर्वाह कल्पना तत्त्व के सहारे होता है, जबकि उसका मूल आधार होता है प्रामाणिक इतिहास। इन दोनों के कलात्मक संयोजन पर विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की सार्थकता आधारित है। इसी कारण सहज ही कोई उपन्यासकार अपनी रचना के विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास होने का दावा नहीं कर सकता। इतिहास और कला के संयोजन की तुला पर ही उनका मूल्यांकन निर्भर है।

इसी आधार पर अब हम हिन्दी और गुजराती के विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे। विषय के व्यापकता की दृष्टि से हमारा यह अध्ययन प्रत्येक वर्ग की प्रातिनिधिक रचनाओं तक ही सीमित रहेगा। ये रचनाएं इस प्रकार हैं —

हिन्दी : डा० वृन्दावनलाल वर्मा : (१) झांसी की रानी – लक्ष्मीबाई
(२) माधवजी सिंधिया
(३) अहिल्या बाई

गुजराती : श्री चुनीलाल वर्धमान शाह : (१) कर्मयोगी रानेश्वर,
(२) राजहत्या
(३) रूपमती।

(क) हिन्दी के विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास :

१ झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई - " झाँसी की रानी - लक्ष्मीबाई " श्री वृन्दावनलाल वर्मा का सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें भारत के १८५७ के स्वातंत्र्य-संग्राम की कहानी है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने १८५७ में इसका शुभारम्भ किया एवं महात्मा गांधी ने १९५७ में इसकी पूर्णाहुति की। अतः १९५६ में प्रकाशित प्रस्तुत उपन्यास के कथावस्तु एवं पात्र लेखक की स्मृतियों में जीवंत होने के कारण रोचक एवं सर्वथा ऐतिहासिक हैं।

झाँसी की रानी के प्रति लेखक का निजी लगाव इसके मूल में निहित है। इसके सम्बन्ध में वर्माजी ने अपने लेख - " आत्माभिव्यक्ति " में लिखा है - " मेरे परदादा दीवान आनन्दराय १८५८ में महारानी लक्ष्मीबाई के देहान्त के उपरान्त स्वतन्त्रता-संग्राम में लड़ते लड़ते मारे गये थे। परदादी से और फिर दादी से लक्ष्मीबाई के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली बहुत घटनाएं सुनीं। उनका मेरे मन पर अमिट प्रभाव पड़ा। "[1] बाल्यावस्था से उत्पन्न रानी के प्रति इस लगाव ने ही लेखक को रानी के प्रति अपने मत के प्रतिपादन के लिये प्रस्तुत उपन्यास के सर्जनार्थ उद्यत किया। साथ ही इसके सर्जन के मूल में एक घटना निहित है, जिसने कृति और कृतिकार दोनों को सुप्रसिद्ध होने का सुअवसर प्रस्तुत किया। लेखक के अनुसार यह घटना इस प्रकार है -

१ डा० वृन्दावनलाल वर्मा : आत्माभिव्यक्ति - " साहित्य-संदेश ", ऐतिहासिक उपन्यास विशेषांक १९५९ जनवरी-फरवरी अंक, पृ० २८६

श्री पारसनीस ने अपनी पुस्तक " रानी लक्ष्मीबाई का जीवन चरित्र " में रानी के विषय में यह विचार व्यक्त किया कि " उनका शौर्य विवशता की परिस्थिति में उत्पन्न हुआ था । [1] वह भारतीय स्वराज्य के हेतु न लड़कर अंग्रेजों की ओर से झांसी का शासन करती हुई विवश होकर जनरल ह्यू-रोज से लड़ी थी । श्री पारसनीस का यह विचार वर्माजी की रानी विषयक धारणा " कि रानी ने स्वराज्य के लिये लड़ाई लड़ी थी " के विरुद्ध था । अतः उन्होंने इसके सम्बन्ध में एक सुदीर्घ शोध-यात्रा आरम्भ की और प्रस्तुत उपन्यास के परिचय में दिये विवरण के अनुसार उन्होंने अपनी धारणा के पोषक और समर्थक तथ्यों का पर्याप्त संकलन किया । अपनी तेरह-चौदह वर्षों की इसी शोध के आधार पर वर्माजी ने पारसनीस के उपर्युक्त मत की असत्यता सिद्ध करने एवं रानी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करने के लिये इस उपन्यास की रचना की, जो वास्तव में इतिहास और उपन्यास का सुष्ठु संयोजन प्रस्तुत करती है ।

संक्षिप्त कथा :

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई बिठूर के बाजीराव द्वितीय के आश्रित मोरोपंत की कन्या थी, बाल्यकालीन नाम मनूबाई, बाल्यावस्था से ही राष्ट्रीय गौरव और महत्वाकांक्षाओं से ओतप्रोत जीवन, अल्पवय में झांसी के राजा गंगाधर राव से इनका विवाह, एवं विवाहोपरान्त मनूबाई झांसी की रानी लक्ष्मीबाई बन जाती है । विलासी राजा गंगाधर से लक्ष्मीबाई की प्रकृति का मेल नहीं बैठता, महलों में भी वह व्यायाम और घुड़-सवारी का

1 डा० वृन्दावनलाल वर्मा, झांसी की रानी " परिचय ", पृ० 1

अभ्यास करती रहती है। दुर्गा, काशी, सुन्दर, मुन्दर आदि अपनी दासियों को भी सखी के रूप में ग्रहण कर उन्हें प्रोत्साहन दे वीर बनाती है। अपने औरस पुत्र की मृत्यु पर दामोदर राव को गोद लिया जाता है और इसे मनवाने की प्रतीक्षा करते हुए रोगग्रस्त राजा गंगाधर राव का अवसान हो जाता है। इस पर भी रानी धैर्य और दृढ़ता से काम लेती है। बाबा-साहब तात्या टोपे और नाना साहब उससे समय-समय पर देश को स्वतंत्र करने की योजना के संबंध में विचार-विमर्श करते रहते हैं। अंग्रेज सरकार जब उसके दत्तक पुत्र को मान्यता नहीं देती, तो वह कुछ समय के लिये मन में अपने क्रोध को दबा कर रह जाती है, किन्तु सिपाही विद्रोह होने पर वह झांसी पर अपना अधिकार स्थापित कर लेती है। जनता का उसे पूर्ण सहयोग सुलभ है। इसी आधार पर वह झांसी के बाहरी आक्रमणों और तनावों पर अपने पराक्रम और दृढ़ता से नियंत्रण कर लेती है।

इतने में विद्रोहियों का दमन करता हुआ अंग्रेजी सेना का जनरल ह्यू-रोज झांसी आ पहुंचता है। रानी और अंग्रेजी सेना के मध्य तोपों का भयंकर युद्ध होता है। रानी की स्त्री-सेना भी अत्यन्त वीरता-पूर्वक कार्य करती है, किन्तु देश-द्रोही दूल्हाजू अंग्रेजों से मिल जाता है और झांसी के किले के ओर्छा-फाटक पर अंग्रेज सेना को मार्ग दे देता है। परिणामतः झांसी की पराजय होती है और रानी को अपने चुने हुए सहायकों के साथ लड़ते हुए झांसी त्याग कर कालपी में तात्या टोपे और रावसाहब की छावनी में शरण लेनी पड़ती है। रानी की योजना से रावसाहब ग्वालियर पर विजय प्राप्त करता है, किन्तु वह विलासिता में लीन हो जाता है। इससे रानी को बड़ी निराशा होती है, किन्तु बाबा गंगादास के निष्काम

कर्म के उपदेश पर रानी आजीवन स्वराज्य के लिये भरसक प्रयत्न करने का संकल्प करती है। ग्वालियर पर अंग्रेज सेना के आक्रमण करने पर और ग्वालियर की सेना के विमुख होने पर रानी अपने अल्प संख्यक सैनिकों के साथ लड़ती हुई युद्ध भूमि से निकलना चाहती है, किन्तु पीछा करनेवाले अंग्रेज सैनिकों से वह मर्माहत हो जाती है और बाबा गंगादास की कुटिया के पास उनकी इहलीला समाप्त हो जाती है।

ऐतिहासिकता :

" झांसी की रानी - लक्ष्मीबाई " की घटनाओं के लिये लेखक ने विविध ऐतिहासिक स्रोतों का उपयोग किया है। कतिपय मुख्य घटनाएं ऐतिहासिक ग्रन्थों से ग्रहण की गयी हैं। कुछ एक घटनाओं के स्रोत उन्हें समसामयिक व्यक्तियों के रोजनामचे और कागजात से मिले हैं। रानी के समय के कई व्यक्तियों से स्वयं मिल कर भी लेखक ने तथ्यों का संकलन और संशोधन किया है। इन सब का संक्षिप्त विवरण लेखक ने भूमिका में दिया है।

बिठूर के पेशवा बाजीराव द्वितीय के आश्रय में अपने पिता मोरोपंत के पास एवं नाना साहब के साथ मनु का लालन-पालन और शस्त्र-शिक्षा झांसी के राजा गंगाधर राव के साथ उसका विवाह, गंगाधर राव द्वारा दामोदर राव को गोद लेना और लार्ड डलहौजी का उसे अमान्य कर झांसी को ब्रिटिश राज्य में मिलाना, सिपाही विद्रोह पर रानी द्वारा झांसी का शासन, देश व्यापी क्रांति, विद्रोहियों के दमन के लिए ह्यू रोज का आना, और उसके साथ रानी का युद्ध, नाना साहब और तात्या टोपे का इस में सहयोग आदि घटनाएं प्रायः सभी प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थों में प्राप्य

है।[1] रानी की स्त्री-सेना और उसके कार्यों का उल्लेख स्वयं सर ह्यू-रोज करता है।[2] रानी के अंतिम शौर्य के समय उसकी सहेली मन्दर का होना भी इतिहास सम्मत है।[3] बाबा गंगादास के कुटीर के स्थान पर रानी की समाधि आज भी विद्यमान है।[4]

इन घटनाओं के अतिरिक्त मोतीबाई, काशी, और सुन्दर के तथ्यों का पता लेखक को कोर्ट के कागजात की शोध के सन्दर्भ में प्राप्त हुआ बताया गया है। नवाब बन्दे के पास से झांसी के राजा रघुनाथ राव के लड़के नवाब अली बहादुर के रोजनामचे के आधार पर नवाब अली बहादुर, उनके नौकर पीर अली, रानी लक्ष्मीबाई की विलक्षणता एवं तत्कालीन समाज की प्रगति और रहन-सहन का चित्रण में किया गया है।[5] उपर्युक्त कोर्ट के कागजात और अली बहादुर के रोजनामचे को इतिहास की आधारभूत सामग्री के रूप में सहज ही ग्रहण किया जा सकता है। इनके अतिरिक्त मुन्शी तुराब अली और अमीमुल्ला जैसे कतिपय वयोवृद्ध व्यक्तियों से रानी की अंग्रेजों के साथ की लड़ाई के सम्बन्ध में तथ्यों का संकलन कर बानपुर के राजा मर्दनसिंह को

---

1 (अ) स्वातंत्र्य वीर सावरकर, " दी इन्डियन वार आफ इन्डिपिडेन्स: स्वातंत्र्य वीर सावरकर, पृ० २४-२६ ; ४०७-४४२

(ब) श्री सुंदरलाल : भारत में अंग्रेजी राज, द्वितीय खण्ड, सुन्दरलाल, पृ० ८५६-८५८

(क) इन्द्र विद्यावाचस्पति : भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ० २३७-२५२

देखिये आगे

लिखी रानी की चिट्ठी में प्रयुक्त " स्वराज्य " शब्द से [१] रानी के युद्ध-विषयक लक्ष्य का लेखक ने संशोधन कर प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों में अपना योगदान दिया है ।

श्री पारसनीस का पूर्वोक्त कथन के कि " रानी का शौर्य विवशता की परिस्थितियों " में उत्पन्न हुआ भी यहाँ ऐतिहासिक तथ्य की दृष्टि से विचारणीय है । ऐतिहासिक तथ्य और उपन्यास के कथावस्तु को ध्यान में रख कर यदि देखा जाय, तो पारसनीस का उपर्युक्त कथन नितान्त निराधार नहीं कहा जा सकता । सन् १८१७ ई० की सन्धि के अनुसार झाँसी ने अंग्रेजों की अधीनता पहले ही स्वीकार कर ली थी । तदनुसार झाँसी का शासन अंग्रेजों के निर्देशन में ही चलता था । रानी के औरस पुत्र की मृत्यु के बाद राजा

पिछले पृष्ठ के चालू -

(ड) डा० ईश्वरी प्रसाद : भारत का इतिहास, पृ० ३९५, ४१२

(च) मेजर बी०डी० वसु, दी राइज आफ क्रिश्चियन इन इन्डिया, पृ० ९३७-९३९

२ श्री सुंदरलाल, भारत में अंग्रेजी राज, द्वितीय खण्ड, पृ० ९१७

३ (अ) वही , पृ० ९४६

(ब) श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति, भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का उदय और अस्त, पृ० ३५३

४ श्री सत्य देव वर्मा का पत्र

५ डा० वृन्दावनलाल वर्मा, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई : परिचय, पृ० २

६ वही, पृ० ३

७

गंगाधर राव ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में दामोदर को मान्यता के लिये १५ नवम्बर, १८५३ को अपना निवेदन भिजवाया और २१ नवम्बर १८५३ को उनका निधन हो गया। रानी को गोद के स्वीकार किये जाने की आशा थी, किन्तु ७ मार्च, १८५४ को गोद की अमान्यता और रानी को ५०००) की मासिक वृत्ति के साथ झांसी के ब्रिटिश राज्य में विलय की घोषणा हो जाती है और रानी अपनी तत्कालिक आवेशपूर्ण प्रतिक्रिया के उपरान्त उसे स्वीकार कर लेती है। यदि " स्वराज्य " के लिये झांसी की रानी को युद्ध करना होता, तो झांसी-विलय पर उसे युद्ध करना चाहिये था किन्तु वह ऐसा नहीं करती। उक्त आघात को विवशता के साथ सहन करने का सम्भाव्य कारण यह भी हो सकता है कि झांसी की सेना और शासन अंग्रेजों के अधीन थे। क्रान्तिकारी सिपाहियों द्वारा झांसी के किले पर आक्रमण करने और अंग्रेजों के वध किये जाने पर वह केप्टन गार्डन के सरिश्तेदार और नाना भोपटकर की सम्मति के अनुसार ही अंग्रेजों की ओर से झांसी का शासन-सूत्र अपने हाथ में लेती है और इसकी सूचना जबलपुर अंग्रेज कमिश्नर को भिजवा देती है। इस प्रकार अंग्रेजों की ओर से शासन करने के उपरान्त भी रानी को विद्रोहियों के दमन के लिये आये हुए ह्यू रोज से उसके सम्मुख निःशस्त्र आत्म समर्पण का संदेश जब मिलता है, तो उससे विक्षुब्ध होकर उससे युद्ध करना पड़ता है। इस प्रकार अंग्रेजों की ओर से शासन करने तक की परिस्थितियों से सम्बद्ध तथ्यों के प्रकाश में श्री पारसनीस का कथन उपयुक्त ठहरता है किन्तु अंग्रेजों द्वारा आत्म-समर्पण की आज्ञा के विरुद्ध रानी की युद्ध के लिए तैयारी को पारसनीस की अपेक्षाकृत श्री वर्मा जी की मान्यताओं के अधिक निकट कहा जा सकता है। इसे युद्ध की विवशता के स्थान पर रानी की स्वातंत्र्य-चेतना के उन संस्कारों एवं विवाहोपरान्त प्रयत्नों से सम्बद्ध तथ्यों से जोड़ा जा सकता है।

रानी में बाल्यकाल से ही मराठा-परंपरा की वीरता और साहस-वृत्ति विद्यमान थी । अपनी सहेलियों के साथ शस्त्र-विद्या का प्रयोग उसकी इसी वृत्ति का परिचायक है, किन्तु स्वराज्य के लिये युद्ध करने की रानी की कोई निश्चित योजना नहीं थी और न ही था उसके पास इसके लिये आवश्यक सामर्थ्य । " स्वराज्य " से व्यक्त राष्ट्रीय भावना का सो प्रसार भी तद्युगीन भारत में नहीं था । इसीलिये झांसी-विलय पर भी वह विक्षुब्ध होकर बैठ रहती है । क्रान्तिकारियों के झांसी में विद्रोह पर वह अंग्रेजों की ओर से झांसी का शासन अपने हाथ में लेती है । इसके बाद जब समस्त देश में सैनिक विद्रोह फैल जाता है और जनरल ह्यू रोज " विद्रोह " का स दमन करने झांसी आता है, तब अंग्रेजों के प्रति अपने विक्षोभ के कारण एवं अपने राज्य की रक्षा के लिये वह युद्ध की चुनौती स्वीकार कर लेती है । देश-व्यापी क्रान्ति की पृष्ठभूमिका में एक अंग्रेज के विरुद्ध अपने राज्य की रक्षा के लिये रानी का यह युद्ध एक सीमा तक स्वराज्य (अपने राज्य) के लिये किया गया युद्ध अवश्य कहा जा सकता है । श्री वर्मा जी द्वारा अपनी मान्यता - " रानी स्वराज्य के लिये लडी " के प्रतिपादन के लिये की खोजों में बानपुर के राजा मर्दनसिंह को लिखे रानी के पत्र में प्रयुक्त " स्वराज्य " शब्द के अतिरिक्त और कोई सबल ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है, " स्वराज्य " सम्बन्धी लेखक की युगीन चेतनाने ही लेखक को रानी के चरित्र में " स्वराज्य चेतना " देखने और तदनुरूप उसे अभिव्यक्त करने को बाध्य किया है । अतः " रानी स्वराज्य के लिये लडी " वर्माजी का यह कथन आंशिक सत्य की ही अभिव्यक्ति कहा जा सकता है । प्रतीत यही होता है कि अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध क्रान्ति के भडक उठने पर रानी के स्वातंत्र्य-चेतना के संस्कार एकाएक प्रबुद्ध हो उठते हैं और उक्त " विवशता " निश्चय ही स्वराज्य

HANSA MEHTA LIBRARY
151
UNIVERSITY OF BARODA

के लिए बलिदान में परिवर्तित हो जाती है।

स्वराज्य-क्रान्ति और स्वाधीनता प्राप्त करने की तत्परता के वातावरण को निरूपित करने के लिये अपने लक्ष्य के हेतु उत्सर्ग हो जाने वाले मोतीबाई - बुदावख्श, सुन्दर-रघुनाथसिंह छोटी मंगिन और नारायण शास्त्री तथा झूही और तात्या की प्रासंगिक कथाओं को ग्रहण किया गया है। तात्या के प्रति झूही के प्रेम को एक पक्षीय प्रेम के रूप में चित्रित कर लेखक ने तात्या के ऐतिहासिक चरित्र की रक्षा करने का प्रयत्न किया है। उपर्युक्त रोमांस पूर्ण प्रासंगिक कथाओं में लेखक ने कल्पना का समुचित प्रयोग किया है।

इसके अतिरिक्त १८१७ में झांसी के सूबादार शिवराव भाऊ के पौत्र रामचन्द्र के साथ ब्रिटिश इन्डिया गवर्मेन्ट ने सन्धि की और झांसी के राज्य पर वंश परंपरागत अधिकार को मान्य किया। १८३३ की संधि में लार्ड विलियम बेंटिंक ने रामचन्द्र राव को झांसी के " राजा " की उपाधि से विभूषित किया।[1] राजा रामचंद्र राव के निधन पर रघुनाथराव और उनके पश्चात् राजा गंगाधर राव झांसी के सिंहासन पर आरूढ हुए। २१ नवम्बर १८५२ को राजा गंगाधर राव का निधन हो गया। अपने मृत्यु से पूर्व उन्होंने दामोदर राव को विधिवत् गोद ले लिया था और उसकी मान्यता के लिये अंग्रेज सरकार को इसकी सूचना भी दे दी थी, किन्तु लार्ड डलहौजी ने दत्तक पुत्र को अमान्य कर झांसी को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया।[2] यह अंग्रेजों का

१ (अ) झाँसी की रानी प्रस्तावनात्मक कथन प्रकरण १

(ब) श्री सुन्दरलाल, भारत में अंग्रेजीराज, द्वितीय खण्ड, पृ० ७१२-१५

२ वही, पृ० ७१४

अत्याचार और अन्याय पूर्ण व्यवहार था। लार्ड डलहौजी ने अपने समय में प्रचलित सहायक संधि और " गोद " के अधिकार का स्वैच्छिक प्रयोग कर सतारा, नागपुर, झांसी, बरार, सम्बलपुर, जैतपुर, तंजौर, करनाटक, और अवध आदि भारत के कितने ही राज्यों को हड़प लिया था। यह सर्वथा इतिहास सम्मत है।[1]

प्रस्तुत उपन्यास की घटनाओं से सम्बद्ध पात्रों के रूप में बाजीराव पेशवा, मोरोपन्त, लक्ष्मीबाई, राजा गंगाधर राव, दामोदर, नाना साहब, राव साहब, तात्या टोपे, बांदा के नवाब, देशमुख रामचन्द्र, नवाहर सिंह, सुन्दर, रघुनाथ सिंह, गुलाम गौस खां आदि का उल्लेख प्रायः सभी सम्बन्धित इतिहास-ग्रन्थों में मिलता है।[2] इनके अतिरिक्त मोतीबाई, दुर्गा, झलकारी, सुन्दर, खुदाबख्श के विवरण लेखक को कोर्ट सम्बन्धी कागजात की छानबीन में उपलब्ध हुए हैं।[3] विश्वासघातक एवं देशद्रोही (दूल्हाजू) के झांसी के पतन के कारण का भी उल्लेख इतिहास ग्रन्थों में प्राप्य है।[4] इसी प्रकार नवाब अली, अलीबहादुर, मुगल खां, झलकारी कोरिन, माऊ, नत्थेखां, छोटी मंगिन आदि सभी पात्रों की ऐतिहासिकता का समर्थन, नवाब अली बहादुर के रोजनामचे के आधार पर,

---

१ (अ) वही, पृ० ७५४-७५७

(ब) डा० ईश्वरी प्रसाद, भारत का इतिहास, पृ० २५४-२५७

२ (अ) स्वातंत्र्य वीर सावरकर, दी इण्डियन वार आफ इन्डिपेन्डन्स, २४-२५, ४०७-४४२

(ब) श्री सुंदरलाल, भारत में अंग्रेजी राज, पृ० ८५६-५८ (II)

३ श्री वृन्दावनलाल वर्मा, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई : परिचय, पृ० ४

४ श्री सुन्दरलाल, भारत में अंग्रेजीराज, II, पृ० ५४०

कृति के परिचय एवं उसकी प्रस्तावना में, वह स्वयं कहता है ।[1] छोटी भंगिन का असली नाम मुरिया था, जिसे बदल कर लेखक ने छोटी बना दिया है ।[2] इस प्रकार प्रस्तुत कृति के प्रायः सभी पात्र इतिहास सम्मत हैं ।

राजा गंगाधर राव का संगीत और नाट्य-कला के प्रति प्रेम, उसकी विलासिता, हल्दी कुं० कुं० और सिन्दूरोत्सव, मठ और यज्ञोपवीत को लेकर उत्पन्न हुआ विवाद, स्वराज्य के लिये विद्रोह और जन क्रान्ति, किलाबंदी और युद्ध आदि के वर्णन हमारे सम्मुख तत्कालीन वातावरण को प्रस्तुत करते हैं । लेखक ने इनके वर्णन में इतिहास की पूर्ण रक्षा की है ।

साहित्यिक विवेचन :

कथा वस्तु :

पूर्ववर्ती पृष्ठों के विवेचन से प्रकट है कि इस उपन्यास का कथानक लोकविश्रुत है । ऐतिहासिक उपन्यास मूल कथानक में तथ्यगत मौलिकता या नवीनता की अपेक्षा नहीं होती । किन्तु इसकी मौलिकता इस बात में है कि लेखक ने अनेक ऐतिहासिक तथ्यों की खोज करके उनका उपन्यास में कुशलता के साथ उपयोग किया है जो सर्वथा नवीन एवं मौलिक हैं । इन तथ्यों एवं घटनाओं पर पूर्ववर्ती विवेचन के अन्तर्गत विचार किया जा चुका है ।

कथानक को रोचक बनाने के लिये लेखक ने मोतीबाई और सुदाबख्श, नूही और तात्या टोपे मुन्दर और रघुनाथसिंह तथा नारायण शास्त्री

१ श्री वृन्दावनलाल वर्मा, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, प्रस्तावना, पृ० ५०३
२ वही

४ और छोटी भंगिन की प्रेम-कथाओं द्वारा एक आदर्शोन्मुख और यथार्थ रोमान्स की सृष्टि की है। इनमें से मोतीबाई और मुदावल्ल तथा नारायण शास्त्री और छोटी भंगिन सर्व प्रथम वैयक्तिक प्रेम के साथ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत होते हैं किन्तु बाद में रानी की स्वातंत्र्य-चेतना से प्रभावित होकर देश-प्रेम और बलिदान की भावना से युक्त दृष्टिगत होते हैं। जूही और लाल्या टोपे तथा मुन्दर और रघुनाथसिंह में रानी के प्रभाव से उत्पन्न देश-प्रेम और स्वाधीनता की समान भावना के कारण ही परस्पर सहज-प्रेम का आविर्भाव होता है, जो स्वातंत्र्य-युद्ध में भी निर्बाध रूप से उनके कर्तव्यपालन में सहायक होता है। इनके अतिरिक्त उपन्यास में कई रोचक प्रसंग व विद्यमान हैं। घोड़े से गिरने के बाद दूसरे दिन प्रातःकाल नाना के साथ मनू का बाल-सुलभ कथोपकथन और विवाह के समय मजबूत गाँठ बाँधने की उक्ति एक नैसर्गिक रोचकता से युक्त हैं। हरदी-कूं-कूं के दोनों प्रसंग [1] नारियों के आत्मीयता पूर्ण हास-परिहास से भरे हुए हैं जिन्हें निश्चय ही रोचक कहा जा सकता है। चतुरता पूर्ण प्रश्नोत्तरों द्वारा पति का नाम लिवाने के कथोपकथन कथावस्तु को गति देने के साथ उसे मनोरम भी बनाते हैं। स्वयं रानी भी सामान्य स्त्रियों के आनन्द में सहयोगी बनती है। किन्तु द्वितीय प्रसंग के आरम्भ से पूर्व का विवरण [2] इतना लम्बा हो गया है कि वह अनावश्यक ही नहीं प्रतीत होता, अपितु उसका विस्तार अरुचिकर भी कहा जा सकता है। घोड़े पर लड़ते डाकू संग्रामसिंह को रानी और मुन्दर का पकड़ना और उसका आत्मसमर्पण पर्याप्त रूप से रोचक और

१ (क) श्री वृंदावनलाल वर्मा, झाँसी की रानी, नवम संस्करण, पृ० ९५ से १०१ तक
(ख) वही, पृ० २४५-२४८

२ वही, पृ० २४५ पैराग्राफ, २, ३, ४।

कुतूहलपूर्ण है। इसी प्रकार रानी के फांसी परित्याग पर झलकारी का रानी बन कर अंग्रेजों को छकाना भी कम रोचक नहीं है। अंग्रेज उसे रानी मान " रानी पकड़ी गई " सोच कर आनंदित होते हैं किन्तु देशद्रोही दूल्हा को फटकारने में वह अपना अभिनय भूल जाती है। इस प्रकार लेखक कथावस्तु को रोचक बनाने में लेखक के प्रयत्न काफी सफल कहे जा सकते हैं।

कथावस्तु की आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं के संगुम्फन में ही उपन्यासकार की कला का कौशल दृष्टिगत होता है। घटनाओं का क्रम, उनका सम्यक् निर्वाह और उनकी संगति सुगठित कथावस्तु के आधारभूत तत्त्व हैं। इनसे युक्त कथावस्तु ही सुगठित कथावस्तु कहा जा सकता है। प्रस्तुत उपन्यास में फांसी की रानी की आधिकारिक कथा के साथ मोतीबाई-सुदाबख्श, मुन्दर और रघुनाथसिंह, जूही और तात्या तथा नारायण शास्त्री और छोटी मंदिरवाली कथाएं भी हैं। ये एक ओर कथावस्तु को रोचक बनाती हैं, तो दूसरी ओर कथावस्तु की गतिशीलता में भी योगदान देती हैं। मोतीबाई और सुदाबख्श स्वातंत्र्य-युद्ध में प्राणपणा से लड़ते हुए फांसी में शहीद हो जाते हैं, तो मुन्दर और रघुनाथसिंह ग्वालियर-युद्ध में अन्त तक रानी के साथ विद्यमान रहते हैं। मुन्दर रानी की वीरगति के कुछ क्षण पूर्व ही आहत होती है। जूही ग्वालियर में अंग्रेजों के साथ युद्ध में भी अपनी तोप से भीषण अग्नि वर्षा करती रहती है। नारायण शास्त्री और छोटी मंगिन ग्वालियर में सिन्धिया की फौजों को क्रान्तिकारियों के साथ सम्मिलित होने को तैयार करते हैं। इस प्रकार लेखक ने आधिकारिक कथा के साथ इन प्रासंगिक कथाओं को सुगठित रूप में प्रस्तुत किया है। डाकू सागरसिंह की कथा मुख्य कथा के साथ सहज संघटित नहीं लगती। लेखक ने तत्युगीन सरदारों में व्याप्त डकैती की वृत्ति का निरूपण

करने के लिये ही इसे ग्रहण किया है, ऐसा प्रतीत होता है। इस उपन्यास से हटा देने पर भी मूल कथानक में कोई अन्तर नहीं आता। इसके अतिरिक्त उपन्यास की शेष घटनाएं अधिकांशतः सुसंगत और सुगठित हैं।

विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की प्रायः सभी घटनाएं प्रसिद्ध और लोक-विश्रुत होती हैं। अतः उनकी सम्भाव्यता स्वयंसिद्ध है। लोक-विश्रुत होने के कारण पाठक के लिये वे सहज स्वाभाविक होती हैं फिर भी यह विचारणीय है कि उपन्यास में उनके निरूपण में सम्भाव्यता का कहां तक निर्वाह हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास की घटनाओं में नाना और मनू का बाल-सुलभ व्यवहार और उसकी प्रतिक्रिया, विवाह के समय रानी द्वारा पुरोहित को कही दृढ़ गांठ बांधने की उक्ति, हरदी-कूं-कूं का उत्सव, रानी के पुत्र जन्मोत्सव पर झांसी में आनन्द की लहर, झांसी-विजय पर रानी का आवेश-पूर्ण विक्षोभ और प्रजा का असंतोष, तात्या के देश की दशा का वर्णन कर क्रान्ति के आरम्भ करने की बात पर रानी का धैर्य और प्रतीक्षा की सम्मति, क्रान्ति के बाद रानी द्वारा झांसी का शासन ग्रहण करना, ह्यूरोज के निश्शस्त्र आत्म-समर्पण के संदेश पर अपनी झांसी की स्वाधीनता के हेतु रानी का युद्ध करना, युद्ध की भीषण परिस्थितियों में बान्दा की कोठरी में स्वयं समाप्त हो जाने का विचार, युद्ध में पराजय और सहायक सरदारों के आलस्य के कारण उत्पन्न निराशा आदि का निरूपण सहज सम्भाव्यता से युक्त है। ये घटनाएं प्रतीतिकर होने के साथ कुतूहल और रोचकता की वृद्धि में भी सहायक होती हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक की मौलिकता उसकी युगीन चेतना की सर्वतोमुखी अभिव्यक्ति में है। यहां रानी जनता के साथ मिल कर

स्वाधीनता के आन्दोलन को जनता का आन्दोलन बना देती है। रानी की स्वातंत्र्य-चेतना से प्रभावित हो कपड़ा बुनने वाला पूरन कोरी शस्त्राभ्यास में लग जाता है, तो झलकारी रानी के सामने शिकायत करती है। रानी के समझाने पर वह स्वयं बन्दूक चलाना सीखने लगती है। यहां प्रेमियों का वैयक्तिक प्रेम भी देश-प्रेम और स्वाधीनता के लिये कर्तव्य-पालन में सहायक होकर पनपता है। डाकू सागरसिंह, कुंवर जवाहरसिंह और रघुनाथसिंह आदि सरदार, सभी स्वाधीनता संग्राम के लिये कटि-बद्ध हो जाते हैं। मोतीबाई, जूही, सुन्दर और सुन्दर अपने प्रेमियों के साथ रानी की सेवा में स्वातंत्र्य-युद्ध के लिये तत्पर हो जाती हैं। उनके लिये एवं झांसी की समस्त जनता के लिये रानी स्वाधीनता का प्रतीक बन जाती है। इन सब की गतिविधियों एवं कार्यों में युगीन चेतना का सम्यक् प्रतिनिधित्व हुआ है।

चरित्र-चित्रण :

पात्रों के चरित्र का जीवन्त निरूपण एक ओर उपन्यास को जीवनी और इतिहास से पृथक् करता है तो दूसरी ओर पात्रों को अपना विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करने में सहायक होता है। प्रस्तुत उपन्यास के पात्रों को हम मुख्य, सहायक और गौण पात्रों के रूप में विभाजित कर सकते हैं। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, राजा गंगाधर राव, और जनरल ह्यूरोज इसके मुख्य पात्र हैं। नाना साहब, तात्या टोपे, जवाहरसिंह रघुनाथसिंह, सागर सिंह, खुदाबख्श, माऊ बख्शी, गुलाम गौस खां, और गुलमुहम्मद तथा, सुन्दर, सुन्दर, मोतीबाई, जूही, काशी, तथा बख्शिश इसके सहायक पात्र हैं। इनके अतिरिक्त मोरोपन्त, दामोदर राव, नाना भोपटकर, झलकारी कोरिन, नारायण शास्त्री, छोटी भंगिन, मेजर एलिस, कैप्टन गार्डन, रेजीडेन्ट मालकम,

जनरल स्मिथ, वाकर, नवाब अलीबहादुर, पीरअली, गुलाम खाँ, दुर्गा बाई, दूल्हाजू, डनलप, स्कीन, आदि कतिपय गौण पात्र भी उपन्यास में प्रस्तुत हैं, जो निश्चित प्रसंगानुसार ही उपन्यास में दिखाई देते हैं।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई वीर, निर्भीक और स्वातंत्र्य-संग्राम की अधिनायिका है। बाल्यावस्था में ही धर्म-ग्रन्थों और अपने पूर्वजों के आख्यानों से रानी के मन में वीरता और स्वदेशाभिमान के भाव जाग्रत हो जाते हैं। नाना के घोड़े पर से गिरने पर एवं उसके लिये बाजीराव आदि के व्यग्र होने पर अपने पिता के साथ एवं दूसरे दिन प्रातःकाल नाना के साथ हुए वार्तालाप में उसके इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति है। उसमें शौर्य और वीरता के भाव तो उसे नाना द्वारा छबीली सम्बोधन का भी प्रतिवाद करने को प्रेरित करते हैं। विवाहोपरान्त झाँसी में रानी का गौरवपूर्ण व्यक्तित्व और जनवादी दृष्टिकोण न केवल राजा गंगाधर राव को प्रभावित करता है किन्तु अन्तःपुर की दासियाँ, एवं झाँसी की स्त्रियाँ भी उससे प्रभावित होती हैं, उन्हें लगता है जैसे उनके साथ उनकी संरक्षिका है। उसकी कार्यदक्षता और उसका नेतृत्व सिपाही-विद्रोह के बाद उसके झाँसी के शासन में दृष्टिगत है। रानी से झाँसी की समस्त जनता स्वाधीनता की भावना से प्रेरित हो स्वातंत्र्य-संग्राम में उसके साथ डट कर युद्ध करती है। युद्ध की भीषणताओं में आँखों में आँसू और आत्म-हनन के विचार से रानी को विचलित दिखा कर लेखक ने उस में मानवीय दुर्बलताओं का भी सहज चित्रण किया है।

राजा गंगाधर विलासी, कलाप्रेमी और सामन्ती परम्परा का प्रतिनिधि है। उसकी नाट्य शाला की मोतीबाई और जूही के नृत्याभिनय

उसकी विलासिता और उसके कला-प्रेम के परिचायक हैं। अपराधियों के लिये उसका दण्डविधान उसकी कठोरता और निरंकुशता का परिचय देता है। विवाह के बाद रानी के व्यवहार से वह संयमित बन जाता है। रानी और राज्य के लिये उसकी चिन्ता और अंग्रेजों से उसका निवेदन उसे एक अच्छे पति और राजा के रूप में गौरवास्पद बना देते हैं।

जनरल ह्यू रोज एक सुप्रशिक्षित, अनुभवी, और कुशल सेनापति है। उसमें जातिगत विदग्धता, सत्यवादिता और अद्भुत सैन्य संचालन की क्षमता विद्यमान है। दुर्गाजू को फोड कर अपने इन्हीं गुणों से वह झांसी पर विजय प्राप्त करता है। उसके साथ अन्य अंग्रेज अधिकारी व्यक्ति भी अपनी प्रशासकीय कुशलता, स्वार्थ-साधन, एवं निरंकुशता आदि वृत्तियों से युक्त दीखते हैं। भारतीयों के प्रति उनका अपमाननक दृष्टिकोण उनके संहार को आमंत्रित कर बैठता है।

उपन्यास के अन्य पुरुष पात्रों का चरित्र भी उपन्यास की केन्द्रीय भावना के अनुरूप है। इनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय है तात्या टोपे, जो स्वाधीनता संग्राम के लिये देश-भ्रमण कर राजा और जनता को उद्बुद्ध करने में लीन दिखाई देता है। सैन्य संगठन के साथ ही वह एक कुशल सेनानी भी है। इसके अतिरिक्त अंतक तक रानी के शरीर की रक्षा करने वाला वीर योद्धा रामचन्द्र देशमुख, प्रधान सेनापति जवाहर सिंह, पदाति सेना के कर्नल रघुनाथसिंह, प्रधान तोपची गुलाम गौसखां, श्रेष्ठ गोलन्दाज खुदाबख्श एवं वीर योद्धा गुल मुहम्मद आदि पात्र स्वातंत्र-संग्राम के अविस्मरणीय सेनानी हैं।

इसी प्रकार स्त्री पात्र भी रानी के साहचर्य से अद्भुत साहस का

प्रदर्शन करती हैं। इनमें सुन्दर का चरित्र अपेक्षाकृत प्रभावशाली है। वह प्रथम परिचय से लेकर अन्त तक रानी के साथ अंग्रेजों से युद्ध करती हुई वीर गति प्राप्त करती है। मोतीबाई और झूंदी जैसी नाटक की अभिनेत्रियाँ भी युद्ध में तोपों से शत्रु पर भीषण अग्निवर्षा करती हुई स्वाधीनता के लिए आत्म-बलिदान कर देती हैं। सुन्दर और काशीबाई भी रानी की आज्ञा का पालन करते हुए युद्ध की बलिवेदी पर अपना जीवन होम देती है। झलकारी कोरिन का अंग्रेजों की छावनी में स्वयं रानी बन अंग्रेजों को धोखा देने का साहस तो नारी जाति के लिये एक अद्भुत आदर्श है।

इस प्रकार घटनाओं के संयोजन और उनके प्रति पात्रों की प्रतिक्रियाओं द्वारा लेखक पात्रों की चारित्रिक विशिष्टताओं के उद्घाटन में सफल कहा जा सकता है।

कथावस्तु और चरित्र-चित्रण के सन्दर्भ में प्रस्तुत उपन्यास के विषय में कतिपय प्रश्न उठाये गये हैं, जिनकी संक्षिप्त चर्चा यहाँ प्रसंगोचित है। श्री शिवनारायण श्रीवास्तव ने इसे " एक तरह से - - - - महारानी लक्ष्मीबाई का जीवन-चरित्र "[1] माना है। डा० रामदरश मिश्र इसे औपन्यासिक जीवन-चरित्र कहते हैं।[2] किन्तु दोनों लेखकों अपने उपर्युक्त कथन के लिए कोई आधार नहीं प्रस्तुत किये हैं। वास्तव में जीवन-चरित्र और उपन्यास इन दोनों विधाओं का शिल्प ही सर्वथा भिन्न है। जीवन-चरित्र में

१ श्री शिवनारायण श्रीवास्तव, हिन्दी उपन्यास, पृ० १४४

२ डा० रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास, पृ० १५८

तथ्यात्मक विवेचन का प्राधान्य होता है, जब कि उपन्यास में उपन्यासकार कथा-वस्तु और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से घटनाओं का कलात्मक संयोजन करता है। इस उपन्यास में घटनाओं का कलात्मक संयोजन के साथ-साथ एक नहीं अनेक चरित्रों की सृष्टि उनके व्यक्तित्व के विकास के साथ हुई है। जीवनगत घटनाओं का क्रमिक संयोजन होते हुए भी " झांसी की रानी " पूर्णतया ऐतिहासिक उपन्यास है, औपन्यासिक जीवन-चरित्र जैसी कोई साहित्यिक विधा है ही नहीं। अतः इस नाम से उसका उल्लेख न्यायसंगत नहीं प्रतीत होता। शिल्प के अतिरिक्त उद्देश्य की दृष्टि से इसे- इसे जीवनी कहना तर्कसंगत नहीं है। कृति के परिचय में व्यक्त विचारानुसार रानी की स्वाधीनता की भावना और तदर्थ किये गये जन-आन्दोलन को उपन्यास के रूप में प्रस्तुत करने का उद्देश्य लेखक ने स्पष्ट किया है। उपन्यास के आरम्भ में बिठूर में रानी नाना और तात्या टोपे के साथ बातचीत में अंग्रेजों के अत्याचार से विक्षुब्ध हो देश की स्वाधीनता के लिए अपनी तत्परता व्यक्त करती है। झांसी के कथापट में भी जनता की भावनाओं को व्यापक जन-आन्दोलन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अतः इस दृष्टिकोण से भी उसे जीवनी नहीं कहा जा सकता।

कथोपकथन :

कथोपकथन कथावस्तु के अनुरूप, अर्थात् ओज, प्रवाह और गति से युक्त है। पात्रों की प्रवृत्ति के अनुसार उसका आयोजन किया गया है। वह पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के उद्घाटन में पूर्णतया सफल कहा जा सकता है, और कथा की गतिशीलता में भी सहायक होता है। नाना के घोड़े पर से गिर जाने पर मनु और मोरोपंत के मध्य हुआ कथोपकथन एवं आत्म-समर्पण के समय रानी और संग्रामसिंह का कथोपकथन उपर्युक्त तथ्य के उल्लेखनीय उदाहरण

हैं। प्रथम कथोपकथन रानी की चारित्रिक विशेषताओं को प्रकाशित करता है तो द्वितीय कथोपकथन कथा में एक और कड़ी जोड़ देता है।

कथोपकथन में बुन्देलखण्डी के प्रयोग ने तो उसे बहुत ही स्वाभाविक और रोचक बना दिया है। कपड़ेवाले की दूकान पर कुछ-एक ग्रामीणों की फांसी विषयक जिज्ञासा की अभिव्यक्ति ने तो इसे बहुत ही रमणीयता प्रदान की है।[1]

" काये जू, अब फांसी में का होने ? " एक देहाती ने दूकानदार से पूछा।

" जो होत आओ है, सो हुइये। " उत्तर मिला।

" हम गांवबारे इतनोई में समझ जात होते, तो का न हुती। तनिक उल्था करके बताओ। "

ग्रामीण सादगी के साथ बुंदेलखण्डी में यह छोटा-सा संवाद वास्तव में अपनी निराली ही छटा लिये हुए है। परिस्थिति और प्रवृत्तियों के अनुरूप कथोपकथन के विविध रूप प्रस्तुत उपन्यास में उपलब्ध हैं।

वातावरण :

तत्कालीन समाज में ऊंचनीच और छुआछूत का भेदभाव अत्यधिक मात्रा में था। धार्मिक कर्मकाण्ड एवं आचार-विचार में लोग बड़े कठिग्रस्त थे। इसी लिये यज्ञोपवीत और यज्ञ को लेकर लोगों में वितण्डावाद उठ खड़ा होता

1 फांसी की रानी, लक्ष्मीबाई, पृ० १५०

है।

सांस्कृतिक उत्सव के रूप में हरदी-कूं-कूं का उत्सव यहां उल्लेखनीय है। मूलतः यह त्योहार महाराष्ट्र का है। चैत्री नवरात्र की तृतीया को गौरी-पूजन के समय यह मनाया जाता है। सुहागिनें इस सुअवसर पर सिंदूर का आदान-प्रदान करती हैं, भीगे चने और बतासों का प्रसाद वितरित होता है और इसकी सब से बड़ी मनोरमता यह है कि इसी समय स्त्रियां अपने वाक्-चातुर्य से परस्पर एक दूसरी से पति का नाम लिवाती हैं। लेखक ने स्त्रियों की इस वाक्-पटुता में तो काव्य-रस की सृष्टि उत्पन्न कर दी है। महाराष्ट्र के इस त्योहार को बुंदेलखण्ड की भूमि पर चित्रित कर वर्माजी ने इसे राष्ट्रीय उत्सव का स्वरूप प्रदान किया है। इसीसे रानी झांसी की जनता के सम्पर्क में आ उसके साथ आत्मीयता स्थापित करती है। उपन्यास में प्रस्तुत हरदी-कूं-कूं के दोनों पर्वों का अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इस पर्व के निरूपण में भी वर्माजी से सामाजिक औचित्य का भंग हो गया है। हरदी-कूं-कूं जैसे सामाजिक पर्व पर भी रानी, बख्शिन, झलकारी, सुन्दर, और द्वितीय पर्व पर इनके साथ मोतीबाई के अतिरिक्त झांसी नगर की अन्य कोई सम्भ्रान्त परिवार की महिला इस में भाग लेने के लिये आमंत्रित नहीं होतीं, जबकि प्रधानमंत्री लक्ष्मणराव, न्यायाधीश नाना भोपटराव, प्रमुख शाहूकार मगन गंधी जैसे श्रेष्ठ पुरुष रानी के प्रशासन में विद्यमान थे। ऐसा लगता है जनवादी दृष्टिकोण की धुन में यह पर्वकालीन सामाजिक औचित्य उनकी दृष्टि से ओझल रहा है।

राजा और सामंत संगीत और नाट्य-कला से अपना मनोरंजन करते थे। राजा गंगाधर राव की नाटक शाला इसी की परिचायक है।

उपन्यास के आरम्भिक भाग में राजा गंगाधर राव के क्रिया-कलापों द्वारा लेखक ने सामन्ती संस्कृति का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है। राजा गंगाधर राव स्वयं बड़े विलासी एवं निरंकुश प्रकृति के हैं।

तत्कालीन जन-जागृति, सिपाही-विद्रोह, और स्वाधीनता-आन्दोलन आदि उस समय की राजनीतिक स्थिति का एक स्पष्ट विवरण हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। झिलेबंदी का जीवन्त वर्णन तदयुगीन मुद्रण-प्रणाली का एक सजीव चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित कर देता है। इसके अतिरिक्त स्थान-स्थान पर बुंदेलखण्ड के भौगोलिक और प्राकृतिक चित्रण उपन्यास की निधि बन गये हैं। झांसी के जंगलों के वर्णन और बरसाती नदी में रानी और रानी के साथियों के घोड़े की पीठ पर नदी पार करने के चित्रण बहुत ही जीवन्त और मनोरम हैं।[1]

इस प्रकार उपन्यास में प्रस्तुत सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं बुंदेलखंडी वातावरण के चित्र पूर्णतया सुन्दर एवं अपने ऐतिहासिक रूप में हैं।

भाषा-शैली :

प्रस्तुत उपन्यास में वर्मा जी की भाषा प्रायः सरल, सरस एवं प्रवाहमयी है। पात्र की शिक्षा-दीक्षा, स्थिति, विषय-वस्तु एवं मनोभाव के अनुसार वह परिवर्तित होती रहती है। समयानुसार उसका अलंकृत एवं सुसंस्कृत रूप भी दृष्टिगत होता है। पात्रानुकूल भाषा का उदाहरण देखिये ;

1 डा० वृन्दावनलाल वर्मा, झांसी की रानी, पृ० २८३

रानी की मृत्यु पर दृढ़ हृदय पठान गुलमुहम्मद भी द्रवित हो उठता है, " बस बाई । अब बंदूक या कोई हथियार नहीं छुऐगा । अब खुदा पाक की याद में बाकी जिन्दगी खतम करेगा । " एक अंग्रेज सवार उससे रानी के मजार के विषय में पूछता है, " यह किसका मजार है साईं साहब । " गुलमुहम्मद उत्तर देता है, " हमारे पीर का । वो बोत बड़ा वली था । "[1] गुल मुहम्मद एक पठान है । यहां उसकी भाषा ठीक उसीके वर्ग के लोगों की सी है । इसी प्रकार बाबा गंगादास की भाषा रानी को कर्मयोग का उपदेश देते समय, एक सुसंस्कृत और अलंकृत रूप धारण कर लेती है ।

बुंदेलखंडी बोली के प्रयोग से उपन्यासों में सरसता और स्वाभाविकता दोनों का समावेश हो गया है । वर्माजी इससे न केवल भलीभांति परिचित ही हैं, वरन् उन्होंने इसका सुष्ठु प्रयोग भी किया है । डा० रामविलास शर्मा ने इसके सम्बन्ध में बहुत ही उपयुक्त लिखा है, " बुंदेल खंड की कहावतें, मुहावरे, लोकगीत आदि वर्माजी के उपन्यासों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है । उन्होंने अनेक ग्रामीण शब्दों का अपने गद्य में प्रयोग करके भाषा को समृद्ध किया है । "[2] आगे चलकर बुंदेलखंडी की सरसता के विषय में उन्होंने लिखा है, " झांसी की रानी लक्ष्मीबाई " में झलकारी के दो बोल अमर हैं । रानी नाम पूछती है । जवाब मिलता है – " सरकार झलकारी दुलैया । " इस दुलैया के आगे देव, बिहारी, मतिराम सब हेय हैं । उस शब्द की व्यंजना शक्ति को उनके सवैया घनाक्षरी नहीं पा सकते । और जब झांसी अंग्रेजों

१ झांसी की रानी – लक्ष्मीबाई, पृ० ४१७

२ डा० राम विलास शर्मा, " वृंदावनलाल वर्मा " शीर्षक निबन्ध " नयापथ " अप्रैल, १९६१ ।

के अधीन हो जाती है, तब झलकारी दुलैया बुंदेल खंड की जनता का अपार क्षोभ इस वाक्य में उडेल देती है - " छाती बर जाय इन अंगरेजन की, भुटक लई झाँसी । "

मुख्यतया वर्माजी ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है । अपने सहज और सरल ढंग से वे वस्तु और पात्र के चित्र सा प्रस्तुत करते हुए अग्रसर होते हैं । इस प्रक्रिया में वर्मा जी काफी सिद्ध हस्त हैं । उनकी वैयक्तिकता भी इसमें झलक उठती है । पाठक शीघ्र ही कुछ-एक पंक्तियाँ पढ कर जान जाता है कि यह रचना वर्मा जी की है । नाटकीय शैली का भी आपने विपुल प्रयोग किया है । आपकी रचना में दोनों शैलियों का सुन्दर समन्वय दृष्टिगत होता है । आपकी भाषा में कुछ एक व्याकरण सम्बन्धी दोष भी दीख पड़ते हैं, किन्तु वे नगण्य हैं, उनसे रचना के साहित्यिक सौष्ठव पर अवांछनीय प्रभाव नहीं पड़ता ।

उद्देश्य :
o-o-o-o

पारसनीस के विचारों की असत्यता सिद्ध कर श्रद्धेय रानी को अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करना तो कृतिकार का मुख्य लक्ष्य था ही, किन्तु इससे परे भी लेखक को बहुत कहना था । अपने समय में लेखक ने जन साधारण में एक नैराश्य वृत्ति देखी और यह भी देखा जैसे वह हतोत्साह और अपंग होकर पूर्ण विजडित हो गया है । वर्माजी ने ऐसे निराशाग्रस्त जन को जागृत कर उसे अपने ध्येय की प्राप्ति के हेतु प्रयत्नशील बनाने के लिए, वीरता साहस, और शौर्य की प्रतिमूर्ति रानी लक्ष्मीबाई का जीवंत चरित्र उसके सम्मुख रखा । इतना ही नहीं, उनके सम्पर्क में आनेवाले सभी स्त्री पात्रों से स्वराज्य संग्राम में अपने

२७ जीवन की आहुतियाँ दिला वर्माजी ने युवक वर्ग को यह भी ध्वनित किया है कि जहाँ एक नारी अपने निजी स्वार्थों से ऊपर उठ कर एक उच्च और तेजस्वी जीवन का आदर्श प्रस्तुत कर सकती है, तो इस देश के युवक क्या नहीं कर सकते ? सब कुछ, आवश्यकता बस एक लगन की है ।

प्रेम की अपेक्षा राष्ट्रीय कर्तव्य की प्राथमिकता को उन्होंने प्रश्रय दिया है । अपनी स्वार्थान्धता से ऊपर उठने में ही हमारा श्रेय है । समाज अब परिवर्तन चाहता है, जाति पाँति और ऊँचनीच के भेदभाव अब समाप्त हो जाने चाहिए । वर्माजी ने इस बात पर विशेष रूप से जोर दिया है कि अब हमें जन साधारण के महत्त्व को पूर्णतया स्वीकार करना चाहिए । जनता अमर है, अमिट है और उसकी शक्ति सर्वोपरि है ।

अंत में हम यही कहेंगे कि आपका यह उपन्यास प्रथम कोटि के ऐतिहासिक उपन्यासों में श्रेष्ठ कृति है । डा० राम विलास शर्मा के एतद्विषयक विचार बहुत ही समीचीन हैं । उन्होंने लिखा है, " श्री वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास " झाँसी की रानी - लक्ष्मीबाई " हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में एक मार्ग चिह्न है । इसमें कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जिनसे यह उपन्यास परवर्ती ऐतिहासिक उपन्यासकारों का मार्गदर्शन करता रहेगा । कारण यह है कि वर्माजी ने लक्ष्मीबाई के सहारे झाँसी की जनता को ही अपने उपन्यास की कथावस्तु बना डाला है । उनकी रचना में सामंत शाही, निरंकुशता, सामाजिक उत्पीडन, अंग्रेजों के खिलाफ जनता का संयुक्त मोर्चा, बुंदेल खंड की भाषा, संस्कृति आदि के सजीव और विशद चित्र मिलते हैं । [१]

१ डा० रामविलास शर्मा, " वृन्दावनलाल वर्मा, " शीर्षक निबन्ध " नयापथ ", अप्रैल, १९६१

पूर्ववर्ती पृष्ठों के विवेचन से प्रकट है कि कथावस्तु, चरि-चित्रण, देश-कालगत वातावरण आदि सभी दृष्टियों से यह उपन्यास ऐतिहासिक तथ्यों के सर्वथा अनुरूप है। रोचकता तथा कथा को समीचीन गति देने के लिए कतिपय ऐसे घटना-प्रसंगों को भी इसमें जोड़ा गया है जो काल्पनिक कहे जा सकते हैं, किन्तु एक तो इतिहास-विरुद्ध न होने के कारण तथा ऐतिहासिक वातावरण के दृष्टिकोण से प्रामाणिक होने के कारण वे निश्चय ही विश्वसनीय कहे जा सकते हैं। तीसरे औपन्यासिक कला के विनियोजन के दृष्टिकोण से यह उपन्यास मानव जीवन का व्यापक फलक प्रस्तुत करते हुए पात्रों की सफल चरित्र सृष्टि का साक्ष्य उपस्थित करता है। अतः उपर्युक्त विशेषताओं के प्रकाश में इसे निश्चय ही विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है।

२ माधवजी सिंधिया

" माधव जी सिंधिया " अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की परिस्थितियों पर आधारित एक विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। अठारहवीं शताब्दी का समय मुगल, मराठा, राजपूत, जाट, सिक्ख और रुहेला शक्तियों के परस्पर संघर्ष अविश्वास एवं विघटन का युग था। ऐसे पतनोन्मुख युग में माधवजी सिंधिया ने मराठा राज्य के एक साधारण सेवक होते हुए भी पूना और दिल्ली की शक्तियों को संगठित कर भारत को एक शक्तिशाली देश बनाने के लिये प्रयत्न किये। इस उपन्यास में लेखक ने माधव जी सिंधिया के इन्हीं प्रयत्नों का सफल चित्रण किया है। प्रस्तुत उपन्यास की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है।

संक्षिप्त कथा :

" माधवजी सिंधिया " की कथा का आरंभ दक्षिण में निजाम

सलाबत जंग के साथ मराठा युद्ध से होता है, जिसमें माधव जी सिंधिया के सुझाव पर आचरण करने से मराठा-सेना की विजय होती है। सैनिक सहायता के बदले में दिल्ली के बादशाह से कुछ संधि के अनुसार पंजाब की सूबेदारी और राजपूताने के राज्यों की चौथ मराठा-राज्य के अधिकार में थी। बादशाह अहमदशाह के समय वजीर सफदरजंग की सेना और मीरबख्शी शिहाबुद्दीन के नेतृत्व में शाही सेना के बीच जब संघर्ष होता है, तो सैनिक सहायता के लिये दोनों पक्ष मराठा- सेना का आह्वान करते हैं। राघोबा और मल्हारराव होल्कर के नेतृत्व में मराठा-सेना दिल्ली की ओर प्रयाण करती है, किन्तु उसके पहुंचने के पहले ही नृशंस हृदय शिहाबुद्दीन पहले बादशाह का शपथ विधि के साथ वजीर बनता है तथा तदुपरांत उसे पदच्युत करके उसके स्थान पर औरंगजेब के प्रपौत्र अजीजुद्दौला को आलमगीर द्वितीय के नाम से बादशाह घोषित कर देता है। अतः मराठा-सेना शिहाब से जागीर और चौथ तथा भरतपुर के जाट राजा सूरजमल से दो करोड रुपयों के वचन के साथ दक्षिण में आरम्भ हुए युद्ध के समाचारों से लौट पडती है एवं निजाम अली और हैदर अली के साथ युद्ध कर विजय प्राप्त करती है। युद्ध में माधवजी का रण-कौशल यश का भागी बनता है।

उधर अहमद शाह अब्दाली पंजाब पर आक्रमण करके आगे बढता हुआ दिल्ली, मथुरा, गोकुल, वृन्दावन को एक साथ उजाडता तथा दिल्ली में रुहेलखण्ड के नजीब नाजिबखां को अपना नायब और शिहाबुद्दीन को पुनः वहां का वजीर बनाकर काबुल लौट जाता है। इसे देख कर पेशवा पंजाब और राजस्थान पर अपने अधिकार की रक्षा के लिए रघुनाथ राव मल्हार राव दत्ताजी और माधवजी सिंधिया को दिल्ली भेजता है। दत्ताजी और नजीब की

सागर लाल के फाऊ प्रदेश में टक्कर होती है, किन्तु इस संघर्ष में दत्ताजी के वीर गति पाने से मराठा-सेना का यह अभियान विफल रहता है। इससे दक्षिण में पेशवा की कर्नाटक विजय फीकी हो जाती है। इतने में नजीब के भुलाने पर अब्दाली पुनः आ धमकता है। अतः देश के शत्रु अब्दाली का दमन करने के लिए पेशवा बालाजी राव पुनः अपने पुत्र विश्वासराव के नेतृत्व में सेनापति सदाशिवराव भाऊ, मल्हारराव होल्कर, इब्राहीम खां गार्दी, जनकोजी तथा माधवजी सिंधिया आदि के साथ एक विशाल सेना दिल्ली की ओर भेजता है। इस अभियान के आरंभ में भरतपुर के राजा सूरजमल और शिहाबुद्दीन की मैत्री से माधवजी दिल्ली पर विजय प्राप्त करते हैं, किन्तु अब्दाली के साथ संधि सम्बन्धी बैठक में सदाशिवराव भाऊ के अपमानजनक व्यवहार के कारण राजा सूरजमल के अपनी सेना सहित भरतपुर चले जाने पर मराठा-सेना धन और अन्न के अभाव से ग्रस्त हो जाती है। ऐसी अवस्था में और भाऊ के अयोग्य नेतृत्व के कारण पानीपत के युद्ध में मराठा-सेना की घोर पराजय होती है। विश्वासराव और सदाशिव भाऊ युद्ध में मारे जाते हैं, तथा इब्राहीम खां गार्दी और जनकोजी जैसे वीर सेना-नायक अब्दाली के हाथों शहीद हो जाते हैं। राजेखां और इंगले जैसे सरदारों की सहायता से माधवजी युद्ध से विक्षत किन्तु जीवित निकल आते हैं। पानीपत के युद्ध के परिणाम से क्षयरोग ग्रस्त पेशवा बालाजी राव भी मृत्यु को प्राप्त होता है। उसकी मृत्यु के बाद उसका द्वितीय पुत्र माधवराव पेशवा बनता है और रघुनाथराव उसका अभिभावक।

कुछ समय पश्चात् पेशवा माधवराव उत्तर भारत की समस्याओं को हल करने के लिये माधवजी सिंधिया और तुकोजी होल्कर को उत्तर में भेजता है, किन्तु अपने कार्यों के सम्बन्ध में दोनों के असहमत होने के कारण उन्हें वापस

बुलाकर दक्षिण के कुछेक अभियानों के बाद माधवजी सिंधिया को पुनः उत्तर भेजा जाता है। इस अभियान में माधवजी जाटों तथा गंगाधार के रुहेलों को युद्ध में पराभूत करते हैं और इसके बाद नजीब की मृत्यु के साथ दिल्ली पर मराठा सेना अपना अधिकार जमा लेती है।

इधर दक्षिण में माधवराव के निधन पर उसका पुत्र नारायणराव पेशवा बनता है, किन्तु राघोबा के षड्यंत्र से उसकी मृत्यु हो जाती है। ~~सत्ता~~ स्वार्थ निष्ठ राघोबा स्वयं पेशवा बनने के लिए अंग्रेजों की शरण ग्रहण कर उन्हें सालसिट और बेसिन लिख देता है। इसके बाद कुछ समय तक संधि और युद्ध का चक्र चलता है। दक्षिण में माधवजी सिंधिया ने अंग्रेजों को भी अपनी नीतिमत्ता और कुशलता से काफी प्रभावित किया। अन्ततः मराठा-सेना की विजय पर सालबाई की संधि अस्तित्व में आती है।

उधर दिल्ली में नजीब की मृत्यु के बाद उसका लड़का जाबिता खाँ बादशाह का मीरबख्शी बनता है और बाकी की वसूली के प्रश्न पर बादशाह से युद्ध में पराजित हो सिक्ख बन जाता है। अंग्रेजों से त्रस्त बादशाह माधवजी सिंधिया की शरण ग्रहण करता है और पेशवा को मीरबख्शी बनाने के लिये प्रस्तुत हो जाता है। इधर माधवजी को राजपूताने में अपने अधिकार के लिये जयपुर पर चढ़ाई करनी पड़ती है। इसमें कुछ सैनिकों के द्रोह के कारण तथा पर्याप्त सहायता के अभाव में उन्हें डीग तक हटना पड़ता है किन्तु अलवर के राजा से सहायता प्राप्त करने पर वे अपने लक्ष्य में सफल रहते हैं। इसी दौरान उन्होंने फ्रांसिसी जनरल डे बाई के नेतृत्व में अपनी सेना को आधुनिक ढंग से प्रशिक्षित और सुसज्जित करवाया। इतने में दिल्ली में जाबिताखाँ के लड़के गुलाम कादिर द्वारा मीरबख्शी बनने पर बादशाह को पदच्युत करने और

दिल्ली को लूटने के समाचार पाने पर माधवजी को पुनः दिल्ली जाना पड़ता है। वहाँ गुलाम कादिर की पराजय के बाद दिल्ली में माधवजी शाह आलम को बादशाह बना पेशवा की वकील मुतलक के रूप में नियुक्ति और गो-वध निषेध का फरमान करवा कर दिल्ली और पूना के ऐक्य द्वारा देश को शक्तिशाली बनाने के प्रयत्न में अग्रसर होते हैं। पूना में पेशवा माधवराव नारायण को इसकी खिल्त और फरमान देने के लिये एक समारंभ का आयोजन कर और स्वयं को पेशवा का पटेल घोषित कर माधवजी सिंधिया महान गौरव के अधिकारी बन जाते हैं। उनके इस उत्कर्ष से नाना फड़नीस और उसके व्यक्तियों को बड़ी ईर्ष्या होती है। अन्ततः इसी कारण तुकोजी के पुत्र मल्हार द्वारा विषपान के कारण उनकी मृत्यु हो जाती है।

इस आधिकारिक कथा के साथ गन्ना बेगम, शिहाबुद्दीन और जवाहरसिंह की प्रासंगिक कथा भी विद्यमान है। दिल्ली बादशाह के खास हजारी मनसब कवि पिता और ईरानी गायिका माँ की पुत्री गन्ना बेगम अपने पिता की मृत्यु के बाद दिल्ली में भरतपुर के राजकुमार जवाहरसिंह के साहसी व्यक्तित्व पर मुग्ध हो उसकी जीवन संगिनी बनने को प्रस्तुत हो जाती है। दिल्ली से फर्रुखाबाद के मार्ग में जवाहरसिंह द्वारा उसके अपहरण की योजना बनती है, किन्तु जवाहरसिंह के पिता सूरजमल के बीच में आ जाने से वह क्रियान्वित नहीं होती। इसके बाद उसकी माँ दिल्ली के वजीर शिहाबुद्दीन के साथ उसकी शादी कर देती है, किन्तु गन्ना की जीवनगाथा को और भी मोड़ देने थे। पंजाब पर अब्दाली के आक्रमण के समय अब्दाली की भतीजी मुगलानी बेगम और अब्दाली की इच्छा के अनुसार शिहाबुद्दीन को मुगलानी बेगम की लड़की उम्दा बेगम के साथ भी शादी करनी पड़ती है और गन्ना बेगम को उसकी सेविका के रूप में रहना पड़ता है। दिल्ली में नजीब के हावी हो जाने

पर शिहाबुद्दीन उम्दाबेगम और गन्नाबेगम के साथ जाट राजा सूरजमल के आश्रय में डीग के किले में जा ठहरता है। उम्दा और गन्ना बेगम में यहाँ काफी सौहार्द भाव विकसित हो जाता है। यहाँ गन्ना के हृदय में जवाहर के लिये सन्निहित प्रेम पुनः पनप उठता है। एक समय जवाहरसिंह के दिल्ली आक्रमण पर उसके साथ किये जाने वाले विश्वासघात के सम्बंध में वह सिक्ख के वेश में उसके पास जाकर उसे सावधान भी करती है। शिहाब भी इसका साक्षी था। अतः जवाहरसिंह उससे विक्षुब्ध हो उसको डीग के किले से निकाल देता है। मार्ग में उसके हरम पर गन्ना की प्राप्ति के लिये पुनः विफल आक्रमण होता है। इसके पश्चात् उम्दा के आग्रह पर गन्ना गनीसिंह बन अपने एक साथी मनीसिंह के साथ जवाहर के लिये निकल जाती है किन्तु उसके दरबार में जयपुर के दूतों के सम्वाद से जवाहर के अपनी भाभी के प्रति आकर्षित होने से उसे उससे जुगुप्सा हो जाती है, और वह माधवजी, जिनके कुशल व्यक्तित्व से वह डीग में रहते हुए शिहाबुद्दीन के साथ उन्हें देख कर प्रभावित हुई थी, के पास बनवाडी एक खासकरम के रूप में पहुंच जाती है। वहाँ वह राघोबा के सिपाही से माधवजी के प्राणों की रक्षा करती है। इससे माधवजी उसके प्रति कृतज्ञ हो जाते हैं और उसकी वास्तविकता जान कर भी उसके प्रति सौहार्दपूर्ण रहते हैं। उत्तर अभियान में वह नजीब के धोखे से उन्हें सावधान करती है और बड़े संकट से उन्हें बचा लेती है। अन्त में जम्हूरियत के प्रचारक शाह - फकीर, के प्रयोजन को जान उन्हें सावधान करने के प्रयत्न में वह शिहाबुद्दीन के व्यक्तियों के हाथों में पड जाती है और विषपान कर अपना अन्त कर लेती है।

ऐतिहासिकता :

" माधवजी सिन्धिया " की घटनाओं और उसके पात्रों की

ऐतिहासिकता के लिये वर्माजी ने स्वयं कृति के परिचय में कतिपय इतिहास ग्रन्थों का उल्लेख किया है। इनमें से कुछ माधवजी सिन्धिया के व्यक्तित्व से सम्बन्धित हैं, तो कुछ उनके समय की घटना शृंखलाओं से सम्बद्ध हैं। श्री कीन का क्लर्स आफ् इन्डिया ग्रन्थमाला के अन्तर्गत " माधवराव सिन्धिया " सर जान मालकम का मेमोयर्स सेन्ट्रल इन्डिया, तथा महादजी शिन्दे हयाँची कागज पत्रें (१९३७) आदि ग्रन्थ माधवजी सिन्धिया के व्यक्तित्व सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत करते हैं। माधवजी सिन्धिया के समकालीन मराठा राज्य की घटनाओं एवं दिल्ली स्थित मुगल राज्य के देशी और विदेशी शक्तियों के साथ संघर्ष और तत्सम्बन्धी परिणामों के विषय में स्वयं ग्रान्टडफ का " हिस्टरी आफ् मराठाज ", श्री जी० एस० सरदेसाई का मेन करेन्टस आफ् मराठा हिस्टरी", सर यदुनाथ सरकार के " फाल आफ् दी मुगल एम्पायर " - तीन भाग तथा " परसियन रेकार्डस आफ् मराठा हिस्टरी - देहली अपेन्डिक्स " श्री अर्विन (Irvin) का " लेटर मुगल्स " का आधार ग्रहण किया है।[1] संक्षिप्त कथा के अन्तर्गत निर्दिष्ट ऐतिहासिक घटनाएं उपर्युक्त इतिहास ग्रन्थों एवं अन्य प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थों में भी प्राप्त होती है।[2] केवल उल्लेखनीय यह है कि अंग्रेजों के साथ माधवजी सिंधिया के व्यवहार से सम्बद्ध राघोबा और बंधक अंग्रेजों को

---

१ (अ) श्री जी० एस० सर देसाई, न्यू हिस्टरी आफ् दी मराठाज्, भाग-२, पृ० २०२ से २६० ।

(ब) डा० ईश्वरी प्रसाद, भारत का इतिहास, भाग दो, पृ० २८५ से ३०५ तक ।

(क) मेजर वामनदेव वसु, दी राइज आफ् क्रिश्चियन पावर इन इन्डिया, पृ० २०५ से २२५

(ड) श्री सुन्दरलाल, भारत में अंग्रेजी राज, प्रथम खण्ड, पृ० २४५ से २६६

छोड देने की घटना को यहां ग्रहण नहीं किया गया है, जब कि तत्सम्बन्धी प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थों में उसका उल्लेख है।[1] यह लेखक का ध्यान माधवजी सिंधिया के उज्वल पक्ष पर केन्द्रित होने के कारण हुआ प्रतीत होता है।

गन्ना बेगम की प्रासंगिक कथा का आधार सर जदुनाथ सरकार का ग्रन्थ " फाल आफ् दी मुगल एम्पायर " है, जिसमें गन्ना बेगम के माता-पिता और (शिहाबुद्दीन) इमादुल्मुल्क के साथ उसका विवाह, अब्दाली के पंजाब-आक्रमण के समय उसकी सपत्नी उम्दा बेगम की बांदी के रूप में उसका रहना और १७७५ ईस्वी में मुरादाबाद में उसकी मृत्यु तक का कथन है।[2] इसके अतिरिक्त श्री वेन्डेल (Wendel) ने गन्ना बेगम पर लिखी अपनी पुस्तक में जवाहरसिंह के साथ उसके प्रेम और मार्ग में धावा कर उसका अपहरण करने की योजना और सूरजमल द्वारा उसमें व्याघात, इसके फलस्वरूप बाप-बेटे में वैमनस्य, माधवजी के प्रति उसका आकर्षण और उनकी कविताओं का गाना तथा, १७७५ ईस्वी में उसकी मृत्यु सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख किया है।[3] किन्तु गन्ना और उम्दा बेगम के सौहार्द भाव के निरूपण तथा गन्ना के गनीसिंह बनकर माधवजी के साथ " खास कलम " के रूप में रहना आदि प्रसंग

१ (अ) मेजर वामनदेव बसु, दी राइज आफ् क्रिश्चियन पावर इन इन्डिया, पृ० २२० से २२२।

(ब) श्री सुन्दरलाल, भारत में अंग्रेजी राज्य, प्रथम खण्ड, पृ० २६० से २६२।

२ सर जदुनाथ सरकार, फाल आफ् दी मुगल एम्पायर, भाग दो, पृ० ७७-७८।

३ (क) डा० वृन्दावनलाल वर्मा, माधवजी सिंधिया, परिचय, पृ० ४

(ख) वही, पृ० ५

लेखक द्वारा निर्दिष्ट ऐतिहासिक स्रोतों में उपलब्ध न होने के कारण कल्पना प्रसूत कहे जा सकते हैं। किन्तु माधवजी सिंधिया के परिचय में निर्दिष्ट तथ्य के अनुसार वर्माजी ने कल्पना को भी इतिहास मूलक रखा है।[1]

शिहाबुद्दीन उपन्यास का एक महत्त्वपूर्ण पात्र है। " परिचय " शीर्षक के अन्तर्गत भूमिका में इसका शिहाबुद्दीन इमादुल्मुल्क के नाम से उल्लेख है।[2] उपन्यास में इसे निजामुल्मुल्क का पौत्र और गाजिउद्दीन का पुत्र कहा गया है।[3] और साथ ही " इमादुल्मुल्क " की भाँति " गाजिउद्दीन " का इसके खिताब के रूप में भी उल्लेख है।[4] कथावस्तु के जिन ऐतिहासिक स्रोतों का निर्देश श्री वर्माजी ने दिया है, उनमें उपन्यास में वर्णित शिहाबुद्दीन के कार्य-कलाप गाजिउद्दीन के नाम से दिये गये हैं और शिहाबुद्दीन की चर्चा नहीं आई है, किन्तु सम्बद्ध घटनाओं और क्रिया-कलापों में साम्य है।[5] केवल डा० ईश्वरी प्रसाद ने निजामुल्मुल्क के पौत्र का नाम शिहाबुद्दीन दिया है,

---

१ डा० वृन्दावनलाल वर्मा, माधवजी सिंधिया, परिचय, पृ० ४

२ वही, पृ० ५ ३ वही, पृ० ३

४ " और इसके खिताब होंगे " इमादुल्मुल्क, गाजिउद्दीन खान बहादुर अमीरुल उमरा, निजामुल्मुल्क आसफजाह " – द्रष्टव्य है, माधवजी सिंधिया, पृ० २४

५ (अ) सर यदुनाथ सरकार, फाल आफ् दी मुगल एम्पायर, पृ० ४
(ब) डा० आर० सी० मजूमदार, एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ् इन्डिया, पृ० ५२५
(क) श्री जी० एस० सेलार्ड सरदेसाई, हिस्ट्री आफ् मराठाज, भाग-२, पृ०१५

किन्तु गाजिउद्दीन को उसके पिता के रूप में नहीं उल्लिखित किया है।[1] श्री वर्मा जी ने डा० ईश्वरी प्रसाद का आधार लिया हो, ऐसी संभावना स्रोत-विषयक निर्देशों के प्रकाश में नहीं की जा सकती। अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रामाणिक सामग्री के अभाव में " शिहाबुद्दीन " का अस्तित्व इतिहास सम्मत नहीं है। अधिक से अधिक शिहाबुद्दीन को गाजीउद्दीन के अन्य नाम के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु गाजिउद्दीन के पुत्र से सम्बद्ध तथा ऐतिहासिक असंगति का द्योतक ही कहा जायगा। यह उल्लेखनीय है कि घटनाएं और ऐतिहासिक परिस्थितियां अवश्य इतिहास सम्मत हैं। शाहवली और अब्दुल अजीज " सल्तनते जम्हूरियत " की प्रवृत्ति के परिचयार्थ प्रस्तुत किये गये प्रतीत होते हैं। इनके अतिरिक्त शेष सभी पात्र पूर्व निर्दिष्ट इतिहास ग्रन्थों के आधार पर ऐतिहासिक कहे जा सकते हैं।

ऐतिहासिक परिस्थितियों की दृष्टि से विचार किया जाय, तो अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक आते-आते मुगल साम्राज्य की शक्ति क्षीण हो चली थी। कितने ही अफगान इसका लाभ उठाने के लिये दिल्ली के बादशाह के पास से मनसबी ग्रहण कर गंगा के दोआब और रुहेलखण्ड में जागीरें प्राप्त करके या शाही सेना में सरदारी प्राप्त कर आ जमे थे। ये मनसब व जागीर सेना के निर्वाह के लिए दी गयी जागीरों का स्वार्थ के लिये उपयोग करते थे। बादशाह की विलासिता और शासकों की स्वार्थपरायणता के कारण न केन्द्र को नियमित कर मिलता था और न सैनिकों को वेतन। अतः सैनिकों को जब वेतन नहीं मिलता, तो उनके द्वारा नगर की लूट एक

---

1 डॉ० ईश्वरी प्रसाद - भारत वर्ष का इतिहास भाग - 2 पृ० 2-4 - 3-4 तक।

सामान्य बात हो गयी थी ।[1] ऐसी अवस्था में जब कहीं युद्ध की स्थिति उत्पन्न होती, तो मराठा-सेना की सहायता ली जाती । इस सैनिक सहायता के लिए उन्हें राजस्थान के राज्यों से चौथ वसूली का अधिकार दिया गया था ।[2]

शासन की दुर्बलता के कारण जनता भी बड़ी असहाय अवस्था में थी । गोकुल, मथुरा और वृन्दावन में तथा दिल्ली में भी अब्दाली का नृशंस अत्याचार और नर संहार उसकी विवशता का परिचय देते हैं । देश की आर्थिक स्थिति भी काफी क्षीण थी । विदेशियों का बार बार देश को लूटना और युद्धों की परम्परा इसके लिये उत्तरदायी कहे जा सकते हैं । उपर्युक्त वातावरण मुगल साम्राज्य और मराठा-इतिहास के प्रसिद्ध ग्रन्थों के आधार पर इतिहास सम्मत कहा जा सकता है, जिनका उल्लेख लेखक ने अपनी कृति के परिचय में भी किया है ।[3]

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि किंचित् अपवादों को छोड़कर "माधवजी सिंधिया " घटना, पात्र, और वातावरण के इतिहास सम्मत होने के कारण विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की कोटि में रखा जा सकता है ।

साहित्यिक विवेचन :

कथावस्तु :

" माधवजी सिंधिया " की संक्षिप्त कथावस्तु हम आरंभ में ही

१ सर जदुनाथ सरकार, फाल आफ् दी मुगल एम्पायर, द्वितीय भाग, पृ० १८-२०

२ श्री जी० एस० सरदेसाई, दी करैंटस् आफ् मराठा हिस्टरी, पृ० १२०

३ श्री वृन्दावनलाल वर्मा, माधवजी सिंधिया, परिचय, पृ० २-३

प्रस्तुत कर आये हैं। अतः यहाँ उसका कलापक्ष ही विचारणीय है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक का इतिहास के प्रति आग्रह होने के कारण कथावस्तु के संगठन पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा है। प्रस्तावना में उपन्यास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने के बाद निजाम-युद्ध की घटना आती है। इसके पश्चात् दिल्ली में शिहाबुद्दीन की मीर बख्शी के रूप में नियुक्ति के बाद वजीर सफदर जंग और शिहाबुद्दीन के वार्तालाप में दिल्ली की अराजक स्थिति और मराठों को पंजाब और राजस्थान से चौथ वसूली के अधिकार का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। सफदर जंग और शाही सेना में संघर्ष के कारण मराठा सेना का दिल्ली की ओर प्रयाण होता है। किन्तु उसके वहाँ पहुंचने से पूर्व ही शिहाबुद्दीन के अहमद शाह को पदभ्रष्ट कर आलमगीर द्वितीय को सिंहासनारूढ किये जाने पर लेखक पुनः दक्षिण और राजस्थान की घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करने लगता है। पंजाब पर अब्दाली के आक्रमण और विध्वंस के बाद मराठा-सेना का उत्तर की ओर प्रयाण और वहाँ की स्थिति का वर्णन आरंभ होता है। इस प्रकार उपन्यास की कथा का क्षेत्र उत्तर में दिल्ली, पंजाब, अवध, दोआब, मथुरा, गोकुल, वृन्दावन, आगरा तथा दक्षिण में पूना, हैदराबाद, कर्नाटक बनवाडी, तालेगांव आदि के प्रदेशों तक विस्तृत है। समसामयिक वातावरण के निरूपण के लिये इसकी आवश्यकता अस्वीकार नहीं की जा सकती, किन्तु इससे उपन्यास का कथावस्तु सुगुम्फित नहीं हो सका है।

उपन्यास में इतिहास के प्रति लेखक का आग्रह और घटना-बाहुल्य के कारण पाठक कई स्थलों पर नीरसता का अनुभव करने लगता है, किन्तु गन्ना बेगम की प्रासंगिक कथा द्वारा कथानक को रोचक बनाने में लेखक

प्रयत्नशील रहा है। गन्ना की यह प्रासंगिक कथा आधिकारिक कथा के साथ संगुम्फित है। उपर्युक्त घटना-बाहुल्य केवल युगीन परिस्थितियों के लिये उनकी संकुलता एवं संभवतः इतिहासगत आग्रह के लिए देश के विविध भागों की परिस्थितियों एवं घटनाओं का विवरण मात्र जो कभी कभी आधिकारिक कथा से अलग भी पड़ता है, कथानक को जटिल बना देते हैं। एतद्विषयक आलोचकों ने भी इसे स्वीकार किया है।

यह पहले ही निर्दिष्ट किया जा चुका है कि विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की घटनाएं इतिहास प्रसिद्ध और लोक विश्रुत होने के कारण सहज संभाव्यता से युक्त होती हैं। " माधवजी सिन्धिया " में दक्षिण में निजाम और हैदर अली के साथ मराठा-युद्ध, अब्दाली का पंजाब पर आक्रमण और दिल्ली, मथुरा तथा गोकुल की लूट और विध्वंस, अब्दाली के साथ मराठा-सेना का पानीपत का युद्ध, दिल्ली की असहाय स्थिति और जाब्रिता खाँ तथा गुलाम कादिर द्वारा उस पर अधिकार और उसकी नृशंस लूट तथा माधवजी सिंधिया द्वारा उसका संरक्षण, गन्ना बेगम का नवाहरसिंह के साथ प्रेम, राजा सूरजमल का अवरोध और शिहाबुद्दीन के साथ उसकी शादी के बाद भी " डीग "में नवाहर के लिए उसका प्रेम, अपने भाई नहार सिंह की पत्नी के प्रति नवाहर के आकर्षण से गन्ना का मोह भंग और उसका ~~मन्त्रि~~ गनीसिंह अन माधवजी सिन्धिया के आश्रय में शेष जीवन-यापन, तथा नूराबाद में उसकी मृत्यु आदि घटनाओं का चित्रण सहज स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत है। अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि इतिहास के प्रति आग्रह के कारण कथावस्तु

१ " कथानक इतना जटिल और घटनाएं एक दूसरे में इस प्रकार गुम्फित हैं

— बालू

के गुम्फन में व्याप्त शिथिलता और उससे उत्पन्न कुछ नीरसता के साथ-साथ विस्तृत कथावस्तु को यथासंभव रोचक बनाकर प्रस्तुत करने में लेखक को पर्याप्त अंशों में सफलता मिली है।

चरित्र-चित्रण :

माधवजी सिंधिया, पेशवा बालाजी बाजीराव, माधवराव, माधवराव नारायण द्वितीय, बादशाह अहमदशाह, आलमगीर द्वितीय, शाहआलम द्वितीय, शाहआलम, अहमदशाह अब्दाली, निजाम और हैदरअली आदि पात्र प्रस्तुत उपन्यास के मुख्य पात्रों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। उपन्यास की कथावस्तु की गतिशीलता एवं पात्रों के चारित्रिक उद्घाटन में सहायक होने के कारण वजीर सफदर जंग, शिहाबुद्दीन, नजीब खाँ, जाबिताखाँ, गुलामकादिर, रघुनाथराव, विश्वासराव, रामशास्त्री, सदाशिवराव भाऊ, रामचंद्र गणेश, मल्हारराव होल्कर, दत्ताजी, जनकोजी, तुकोजी, नाना फडनीस, जाटराजा सूरजमल, जवाहरसिंह, इब्राहीम खाँ गार्दी, दे बाई, रानेखाँ, हंगले, गन्नी बेगम, मुगलानी बेगम, उम्दा बेगम तथा इसके सहायक पात्र हैं। इनके अतिरिक्त अकीबत खाँ, अदीना बेग, इस्माइल बेग, नजीफ, हमदानी, ताराबाई, गोपिकाबाई, इमरत बेगम, अन्ताजी, शाहवली, अब्दुल अजीज, फतुबशाह, मनीसिंह, मल्हारराव तुकोजी, और रामलाल आदि गौण पात्र हैं जो आवश्यकतानुसार ही उपन्यास में दृष्टिगत होते हैं। पात्रों की इतनी विशाल संख्या भी कथानक को जटिल बनाने में सहायक नहीं जा सकती है।

माधवजी सिंधिया उपन्यास के नायक हैं। लेखक ने उनके तथा

२ अन्य पात्रों के भी चरित्र को प्रस्तुत करने के लिये उनके क्रियाकलाप, घटनाओं के घात-प्रतिघात तथा सम्बद्ध पात्रों के कथोपकथन आदि विविध उपायों का प्रयोग किया है। उपन्यास की प्रस्तावना में वह उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व का चित्र पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। निजाम-युद्ध में उपस्थित पात्रों के विचार-विमर्श द्वारा उनकी सामरिक निपुणता, उत्तर के अभियानों में पेशवा द्वारा मराठा-सेना के साथ उनको भेजे जाने में उनका रण-कौशल और उनकी व्यवहार-पटुता मूल कारण हैं। सदाशिव राव भाऊ के व्यवहार से अपमानित सूरजमल को मनाने के लिए विन्र- विनम्र और वाक्पटु माधवजी की ही सहायता अपेक्षित होती है। उत्तर की समस्याओं के निस्तार के लिये पेशवा माधवराव अन्ततः माधवजी को ही उपयुक्त मानता है। कर्तव्यपरायणता के साथ काव्य और संगीत के लिये उनका प्रेम गन्ना बेगम की संगति में दृष्टिगत होता है। पानीपत और जयपुर की कठिनतम परिस्थितियों में अविचल रूप से उनका अपने कार्य में लगे रहना उनके आत्म-नियंत्रण और अनन्य धैर्य का अभिव्यंजक है। उनका जागरूक सैनिक नेतृत्व डे बाई द्वारा अपनी सेनाओं के आधुनिक ढंग से प्रशिक्षण में व्यक्त होता है।

उपन्यास में नाना फडनीस [१] और गन्ना बेगम [२] के साथ के उनके कथोपकथनों में एवं अन्यत्र भी माधवजी को स्वराज्य के नेता के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया गया है। भरतपुर, जयपुर जैसी रियासतों से युद्ध, निजाम के विनाश की योजना, टीपू विषयक दृष्टिकोण और दिल्ली-

१ श्री वृन्दावनलाल वर्मा, माधवजी सिंधिया, पृ० ५२५-५४२

२ वही, पृ० ४३०

४३ पूना का तथाकथित ऐक्य स्वराज्य और संगठन की भावना के न तो अनुरूप ही है और न ही प्रतीतिकर। आश्रित अवस्था में बादशाह से बालक पेशवा की वकील मुतलक के रूप में नियुक्ति के आयोजन और सात वर्ष बाद पूना समारोह में पेशवा को उसके समर्पण में[1] अपने प्रभाव की वृद्धि कर लेने हेतु प्रयुक्त माधवजी की कूटनीतिज्ञता ही व्यक्त होती है, स्वराज्य और संगठन की भावना नहीं। वास्तव में माधवजी का यही ऐतिहासिक रूप भी है। अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि माधवजी सिन्धिया के चरित्र-चित्रण में लेखक असफल सिद्ध होता है। कथावस्तु, कथोपकथन एवं घटनाओं के घात प्रतिघात से वह व्यक्तित्व की वैसी सृष्टि सही नहीं कर पाया है, जैसा कि वह चाहता है।

उपन्यास के अन्य पात्रों का चरित्र-चित्रण निम्नांकित वर्गों के रूप में प्रस्तुत है।

शास्ता वर्ग :

इस वर्ग में मुस्लिम तथा हिन्दू, ये द्विविध शासक आते हैं। बादशाह अहमशाह, आलमगीर द्वितीय, शाहजहाँ द्वितीय, शाह आलम आदि मुस्लिम शासक हैं। इनके विलासी, असमर्थ और शक्तिहीन होने के कारण, इनके वजीर और अधिकारी अराजकता के प्रसार के साथ या तो इन्हें पदच्युत कर देते हैं या समाप्त कर देते हैं। अहमद शाह अब्दाली भारत पर किये गये

१ श्री जी० एस० सर देसाई, न्यू हिस्टरी आफ् मराठाज, पृ० १५५
(I) बादशाह ने माधवजी को अर्पित की, १४-११-१७४४ के दिन
(II) माधवजी सिंधिया ने पेशवा को दी : २२-६-१७५२, पृ० २३६

आक्रमणों में आचरित अत्याचार अग्नि काण्ड, नर संहार, और जनता की लूट से अपनी नृशंसता और धन लोलुपता का प्रदर्शन करता है। निजाम और हैदर अली के उल्लेख मात्र हैं।

हिन्दू शासक वर्ग के पेशवा बालाजी बाजीराव अपनी मराठा-सेना द्वारा निजाम और हैदर अली पर प्राप्त विजयों का गौरव अवश्य प्राप्त करता है, किन्तु उसका अपना जीवन विलासिता और क्षय-रोग में समाप्त हो जाता है। उसका उत्तराधिकारी पेशवा माधवराव विघटित मराठा-शक्ति को क्रम-पूर्वक पुनर्गठित करता है। राजा सूरजमल एक चतुर, जागरूक और दूरदर्शी जाट राजा है, जबकि उसका पुत्र जवाहरसिंह विलासी सौन्दर्य-प्रेमी और अदूर दर्शी है।

अमात्य-वर्ग :

वजीर सफदर जंग, शिहाबुद्दीन, नजीब खां, जाबिता खां, और गुलाम कादिर, दिल्ली बादशाह के वजीर, मीरबख्शी और मुख्त्यार बनते हैं एवं बादशाह की दुर्बलता के कारण किस प्रकार अपने स्वार्थों की पूर्ति करते हैं, इसे पीछे लक्ष्य किया जा चुका है। इनमें से वैसे सभी धन-लोभी, कुटिल और हृदयहीन तो हैं ही, किन्तु शिहाबुद्दीन तो अपने उस्ताद, सहायक, बादशाह और पत्नी के वध से अमानुषिकता और नृशंसता की सीमा का ही उल्लंघन कर जाता है।

सैनिक अधिकारी :

रघुनाथ राव, सदाशिवराव भाऊ, रामचन्द्र गणेश, मल्हार राव

होल्कर, खण्डेराव, जनकोजी, दत्ताजी सिंधिया, तथा तुकोजी मराठा-सेना के सेनापति और सेना नायक हैं। रघुनाथ राव बालाजी पेशवा का छोटा भाई होने के कारण कभी सेना का नेतृत्व करता है, तो कभी पेशवा माधवराव और नारायण राव का अभिभावक बनता है। नारायण राव की मृत्यु उसीके षड्यंत्र से होती है। सदाशिवराव भाऊ एक अदूरदेशी और उद्धत सेनानायक के रूप में चित्रित हुए हैं। इब्राहीम गार्दी आदि शेष पात्र पराक्रमी तथा उत्सर्ग की वृत्ति से संयुक्त दिखाये गये हैं।

इतर पात्र :

गन्ना बेगम प्रासंगिक कथा की नायिका है। अनुपम सौन्दर्य के साथ, कवि माता-पिता से काव्य और संगीत उसे उत्तराधिकार में प्राप्त होते हैं। अपने इन गुणों से वह अपने सम्पर्क में आने वाले सभी पात्रों को प्रभावित करती है। शिहाबुद्दीन के साथ उसके विफल विवाहित जीवन और नवाहर-सिंह के साथ उसके विफल प्रेम के पश्चात् वह माधवजी सिंधिया के खास कलम के रूप में उनके आदर्शों की प्राप्ति में सहायक होते हुए अपना जीवन उत्सर्ग कर देती है।

इनके अतिरिक्त गौण-पात्रों में शाहवली और अब्दुल अजीज सल्तनते जम्हूरियत के विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं, मुगलानी बेगम अब्दाली की दिल्ली के हरम की लूट में सहायक होती है, अकीबत खां, शिहाबुद्दीन को मीरबख्शी और वजीर बनने में सहायक होता है।

पात्रों के चरित्र-चित्रण में लेखक ने विश्लेषणात्मक और नाटकीय

दोनों पद्धतियों का समन्वयात्मक प्रयोग किया है। पहले वह पात्रों का परिचय प्रस्तुत करता है और फिर तत्कालीन परिस्थितियों में उपस्थित पात्रों के कथोपकथन द्वारा सम्बद्ध पात्रों के विविध चारित्रिक पक्षों का उद्घाटन करता जाता है। उदाहरणार्थ प्रस्तावना में पहले वह माधवजी सिंधिया का परिचय प्रस्तुत करता है, इसके बाद निजाम पर आक्रमण करने के पूर्व सरदारों की गोष्ठी में माधवजी की दिन के युद्ध -सम्बन्धी सम्मति और लोगों की उस पर प्रतिक्रिया तथा उनका उपसंहार, माधवजी, दत्ताजी, एवं कन्नड त्र्यम्बक जैसे सम्बद्ध पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का सम्यक् निदर्शन कर देते हैं। किन्तु जैसा कि लक्ष्य किया जा चुका है कि अनेक स्थलों पर वह इन माध्यमों में संगति नहीं बिठा पाया है, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि अधिकांशतः उनमें ऐतिहासिक औचित्य वर्तमान है।

कथोपकथन :

प्रस्तुत उपन्यास की विस्तृत कथावस्तु में रोचकता के सन्निवेश में संवादों की उपयोगिता महत्त्वपूर्ण है। इसके साथ ही वे कथावस्तु को गतिशीलता प्रदान करने तथा पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के उद्घाटन में सहायक हुए हैं। श्री वर्माजी ने पात्रों के चरित्र को प्रकाशित करने के लिए इनका सब से अधिक उपयोग किया है जो कि उपन्यासकार के लिए सर्वाधिक सरल साधन के रूप में रहता है। किन्तु कथावस्तु को सम्यक् गति देने तथा वातावरण के निर्माण में उनकी उपयोगिता अधिक महत्त्व रखती है। उदाहरणार्थ शिहाबुद्दीन और उसके शिक्षक अकीबत खाँ की बातचीत वजीर सफदरजंग की सहायता से दिल्ली के मीरबख्शी के पद की प्राप्ति के प्रयासों को गतिशील ही नहीं बनाती अपितु वह राजधानी के वातावरण को भी प्रस्तुत कर देती है। इसी

प्रकार सफदरजंग और नजीब, पेशवा बालाजी, रघुनाथ राव और माधवजी, ख्वाजा और शिहाबुद्दीन, अहमदशाह अब्दाली और मुगलानी के संवाद कथा को गतिशील बनाते हुए ऐतिहासिक परिस्थितियों के शब्द-चित्र से खड़े कर देते हैं। उम्दा और गन्ना बेगम तथा जयपुर दूतों के साथ मनीसिंह के कथोपकथन इसी प्रकार कथारस के लिए सहायक एवं शाही हरम के रहस्यों का उद्घाटन करने में सक्षम हैं।

पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के उद्घाटन में इनके उपयोग के विषय में ऊपर लक्ष्य किया जा चुका है। दत्ताजी - माधव जी पुरन्दरे, सफदरजंग, शिहाबुद्दीन, ताराबाई - माधवजी, पेशवा, सदाशिवराव, बादशाह, माधवजी, माधवजी - रामशास्त्री, अब्दाली - इब्राहीम गार्दी, माधवजी - सेनापति राने खां तथा माधवजी सिन्धिया - नाना फड़नवीस के पारस्परिक संवाद पात्रों की रुचि, प्रकृति तथा चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन करते हैं। इनमें यत्र-तत्र हास्य-विनोद का भी पुट है किन्तु इसकी मात्रा अल्प ही है। ये कथोपकथन सशक्त न होते हुए भी सामान्यतया शिल्प में सहायक ही कहे जा सकते हैं।

वातावरण :

उपन्यास में प्रस्तुत अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की ऐतिहासिक परिस्थिति पर पूर्ववर्ती पृष्ठों के अन्तर्गत विचार किया जा चुका है। यहां उसके निरूपण की कला का अन्वेषण वांछनीय है। औरंगजेब के निधन के पश्चात् केन्द्र में बादशाहों की दुर्बलता के कारण दिल्ली में व्याप्त अराजकता, वजीर आदि की स्वार्थ परायणता तथा धन-लोलुपता आदि के कारण विशृंखल

राजशक्ति के वातावरण के निरूपण के लिए लेखक ने उपन्यास की घटनाओं को सम्यक् रूप में प्रस्तुत किया है। अराजकता पूर्ण वातावरण के दो जीवन्त चित्र हमारे समक्ष आते हैं। प्रथम तो अहमदशाह के मनसबों द्वारा वेतन न देने के कारण दुःखी सिपाहियों का कुत्तिया और गधा बांधकर अपना असंतोष व्यक्त करना और जनता को लूट कर अपना काम चलाना,[1] दूसरे, पंजाब की चढ़ाई के समय शिहाबुद्दीन के सैनिकों का उसे घेर लेना और जलील करना।[2]

दिल्ली से ब्रज, मथुरा, गोकुल, वृन्दावन और आगरा तक अहमदशाह अब्दाली के विध्वंसात्मक कार्यों को लेखक ने मार्मिक अभिव्यक्ति की है। – "आगरा से लेकर दिल्ली तक एक भी गांव न बचा। एक भी गांव में एक झोंपडी तक खडी न रही, न कोई किसान-मजूर, ~~नदारद~~ न दोर बैल।[3] अब्दाली द्वारा किये विध्वंस का उपर्युक्त चित्र संक्षिप्त होने के साथ ही काफी अभिव्यंजक और हृदयस्पर्शी है।

पात्रों के कथोपकथन द्वारा भी तत्कालीन वातावरण के निरूपण के लिये लेखक के प्रयत्न प्रेक्षणीय है। ताराबाई और माधवजी सिंधिया का कथोपकथन मराठा राज्य में ताराबाई द्वारा संचालित विरोधी शक्तियों के उपद्रव और सम्बद्ध पक्षों पर पडे उसके प्रभाव और उसकी मानसिक प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करने के हेतु ही आयोजित किया गया है।[4] इसी प्रकार

१ श्री वृन्दावनलाल वर्मा, माधवजी सिंधिया, पृ० २७

२ वही, पृ० ७१-७२

३ वही, पृ० १२१

४ वही, पृ० ४७

इब्राहीम खां गार्दी की नियुक्ति के समय वह पेशवा बालाजी राव को सीखी-सिखाई और अदब-कायदे में ढली हुई फौज की तुलना लूटमार करनेवाली तीस हजार की फौज के साथ करने के औचित्य सम्बन्धी कथन से मराठा-सेना में व्याप्त लूटमार की वृत्ति के कारण नियम संयम का अभाव, और उसके दुष्प्रभाव ध्वनित करता है। [1] शाहवली और शाह अब्दुल अजीज के अपने अनुयायियों के साथ के कथोपकथन मुसलमानों द्वारा सल्तनते जम्हूरियत के आन्दोलन का चित्र प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार वातावरण के निरूपण में लेखक ने घटनाओं के घात-प्रतिघात तथा, पात्रों के कथोपकथन एवं विवरण तथा विश्लेषण का सम्यक् उपयोग किया है।

भाषा शैली :

प्रस्तुत उपन्यास में भी वर्माजी की भाषाकीय सरलता और सजीवता उसी रूप में दृष्टिगत होती है, जैसा हम " झांसी की रानी - लक्ष्मी-बाई " में देख आये हैं। माधवजी सिंधिया में भी लेखक ने वर्णन प्रधान एवं नाट्यात्मक शैली का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है।

विविध अवस्थाओं में पात्रों के चित्रण एवं घटनाओं तथा परि-स्थितियों के निरूपण में लेखक ने वर्णन-प्रधान शैली का सम्यक् उपयोग किया है। पात्रों के शब्द-चित्र एवं आकृति वर्णन इस दृष्टि से प्रेक्षणीय हैं। उपन्यास के आरम्भ में ही प्रस्तुत दत्ताजी और माधवजी पंत पुरन्दरे के शब्द-चित्र देखिये - " दत्ताजी की आंख द्रुत गति वाली थी। चेहरा चौड़ा - खिला

1 श्री वृन्दावनलाल वर्मा, माधवजी सिंधिया, पृ० ४०४

हुआ, गर्दन ठोस और हठधाहिनी । " दूसरा सरदार (माधवजी पंत पुरंदरे) ब्राह्मण था । " मुखाकृति तपस्वियों की सी, हाथ और छाती तलवार और भाला चलाने वालों के जैसे और माथा शास्त्रों की उधेड़-बुन करने वालों जैसा । " यहां उपर्युक्त पात्रों की बाह्याकृति के शब्द-चित्र के साथ ही उनकी अर्थात् दत्ताजी की सतर्कता और आग्रही वृत्ति एवं माधवजी की तपस्विता, वीरता, एवं चिन्तन शीलता जैसी आन्तरिक विशेषताओं की ओर भी इंगित कर दिया गया है । इसी प्रकार उपन्यास माधवजी सिंधिया, रामशास्त्री, गोपिका बाई तथा गन्ना बेगम आदि के शब्द चित्र यथार्थ और जीवन्त हैं । ये सम्बद्ध पात्रों की बाह्याकृति एवं उनकी आन्तरिक प्रवृत्ति, दोनों का उद्घाटन करते हैं ।

पात्रों के चित्रांकन की भांति घटनाओं और परिस्थितियों के निरूपण में भी लेखक की भाषा सक्षम है । अहमदशाह अब्दाली द्वारा पंजाब पर आक्रमण और दिल्ली की लूट, मथुरा-वृन्दावन का विध्वंस, गुलाम कादिर द्वारा बादशाह शाह आलम और उसके हरम की अपमान जनक स्थिति, मराठा सेना, और रुहेलों का रामगढ, अलीगढ, और आगरा पर विजय पाने के लिये किये गये युद्ध आदि के वर्णन में भी हृदय स्पर्शी और प्रभावात्मक हैं ।

घटनाओं और युद्धों के वर्णन के साथ पृष्ठभूमिका के रूप में संक्षिप्त प्राकृतिक वर्णन तो अतीव रोचक एवं मनोहर हैं । फागुन माह में प्रकृति की एक झलक यहां द्रष्टव्य है - " फागुन का महीना लग गया था । यकायक ठण्ड कम हो गई । शीशम और नीम के पेड़ों ने पवन के उष्ण होने के पहले ही पत्ते पीले करके झाड़ दिये थे । अब टहनी-टहनी पर केशरिया रंग
पन्ते

की चिकनी फुनगियाँ फूट पड़ीं और प्रातःकालीन किरणों के साथ खेल खेल कर हरी होने लगीं। "[1] यहाँ भाषा का सहज एवं आडम्बर हीन रूप प्रस्तुत हुआ है। इसी सहज और मुहावरे की शैली में वह कर्नाटक विजय के अवसर पर वसंत और विजय से आन्दोलित लोक मानस का सांकेतिक चित्र प्रस्तुत करता है। - " होली के आने से पहले ही अहमदनगर में धूल धक्कड़, रंग-गुलाल, चंदन-केसर, राग-रंग और नृत्य-गान की रेल-पेल मच गई। "[2]

वर्णन-प्रधान एवं नाट्यात्मक शैली के साथ कुछ एक स्थलों पर - गुलीसिंह का माधवजी सिंधिया के समक्ष अपने कवि रूप में, ग्वालियर में माधवजी पर पूना से उत्तर में अपना स्वतंत्र साम्राज्य स्थापित करने के आरोप पर, सम्बद्ध पात्रों के भावों की अभिव्यक्ति करते हुए लेखक की भाषा-शैली भावना-प्रधान हो उठी है।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में समर्थ भाषा-शैली के उपरान्त भी लेखक की भाषा में कतिपय वाक्य-रचना सम्बन्धी दोष भी विद्यमान हैं, यथा - " रुहेलों ने यमुना पार न कर पाई। " " मैं तुम्हारे ऊपर मुहब्बत करती हूँ। "[3] किन्तु उनके व्यापक भाषा-सौष्ठव के सम्मुख ऐसे दोष स्वल्प एवं मार्जनीय हैं।

उद्देश्य और जीवन-दर्शन :

कृति में लेखक का उद्देश्य स्वराज्य के सेनानी माधवजी सिंधिया

१ श्री वृन्दावनलाल वर्मा, माधवजी सिंधिया, पृ० १५२

२ वही, पृ० १६८

३ वही, पृ० १५४

२ के राष्ट्रीय-गरिमा-पूर्ण व्यक्तित्व का चित्रण करना है। इसके अतिरिक्त उसकी यह भी आंतरिक कामना रही है कि, अठारवीं शती के वातावरण से भारतीय पारस्परिक फूट और असहयोग जैसी अपनी दुर्बलताओं को समझें तथा व्यक्ति और राष्ट्र के लिए अभ्युदयकारी प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख बने रहें। अपने इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए वह माधवजी सिंधिया, इब्राहीम खां गार्दी, और राम शास्त्री जैसे चरित्रों का उदाहरण पाठकों के सम्मुख रखता है और इनके माध्यम से वह सामाजिकों को अपने जीवन में राष्ट्रीयता, अनुशासन, एकता जागरूकता, न्याय प्रियता कर्तव्य, कर्तव्य परायणता, एवं निस्पृहता, जैसे गुणों को विकसित करने की ओर इंगित करता है।

अतीत का विशद चित्रण भी लेखक ने उसके ग्राह्य और अग्राह्य की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए किया है। इसके मूल में उसका संकेत है कि अतीत का अवगाहन कर पाठक अग्राह्य का परित्याग और ग्राह्य को अंगीकार करे। ग्राह्य तत्त्वों का निर्देश उसने अपने उपर्युक्त सत्पात्रों द्वारा दिया है। विद्रूप और अग्राह्य तत्त्वों का निरूपण उसने उपन्यास में आनेवाले अहमदशाह अब्दाली, शिहाबुद्दीन, राघोबा, ताराबाई, तुकोजी होल्कर जैसे असत् पात्रों द्वारा करके उनसे बचने के लिए, उनके परिणामों के रूप में चेतावनी भी इंगित कर दी है।

सामाजिक जीवन के विषय में उसके विचार सर्वथा जनतंत्रात्मक समाजवाद के अनुकूल हैं। उसका विश्वास है कि सामाजिक विषमता और शोषण वर्गभेद को उग्रतर बनाते हैं। इनकी समाप्ति नितांत आवश्यक है। उपन्यास में शाहवली की नम्हूरियत इसी उद्देश्य को लेकर अग्रसर हुई है। [1]

१ माधवजी सिंधिया, पृ० १०१

वह इस मत का समर्थक है कि राजा, जागीरदार, और गरीब सब समान होने चाहिए। जागीर और भूमि सम्बन्धी लेखक के ये विचार आज भी सम्पत्ति-विभाजन और उसकी मर्यादा वाले सिद्धान्तों के अनुरूप बैठते हैं। रामशास्त्री से वह कहलवाता है - " जागीर बपौती नहीं है, राज्य की धरोहर मात्र है। प्रबंध की दृष्टि से जागीर दार के हाथ में वह अमानत है। पुरस्कार के रूप में भूमि-वितरण को वह अनिष्ट कारक मानता है।[1]

प्रथम अध्याय में ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना के उद्देश्यों पर विस्तार से जो विचार किया गया है, उसके प्रकाश में " माधवजी सिंधिया " उपन्यास के उद्देश्य और जीवन-दर्शन पर यदि विचार किया जाय तो यह उपन्यास भारतीय जनता के स्वतंत्रता प्राप्ति के अभियानों से संदर्भित है। यही कारण है कि ऐतिहासिक परिवेश की सीमा में आबद्ध होकर वर्माजी ने वर्ग-विशेष की चेतना को जन-व्यापी चेतना का रूप देना चाहा है। माधवजी सिंधिया, इब्राहीम गार्दी, रामशास्त्री, तथा नाना फडनवीस आदि ऐसे ही पात्र हैं। पूर्ववर्ती उपन्यास झांसी की रानी में यह जनव्यापी चेतना अधिक मुखर है।

२ अहिल्या बाई

जिस प्रकार " झांसी की रानी - लक्ष्मीबाई " शासक वर्ग की ओर से संचालित जन-जागृति एवं स्वातंत्र्य चेतना की उत्सर्गमयी गाथा को लेकर लिखा गया है, उसी प्रकार " अहिल्या बाई " शासक वर्ग की लोकोन्मुखी वृत्ति को प्रकाशित करने वाले कार्य-कलापों को लेकर प्रस्तुत हुआ है। संक्षेप में

१ माधवजी सिंधिया, पृ० २९७

कहा जाय तो इन दोनों ही उपन्यासों की कथावस्तु भले ही, सौ-दो सौ वर्ष पूर्व के ऐतिहासिक अन्तराल पर आधारित हैं, तथापि उसे जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है, वह सम-सामयिक युग के जन-आन्दोलन तथा उसे संचालित करने वाले जन-नायक की युगीन चेतना से अनुप्राणित है। प्रत्येक लेखक अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता, अतः इसके प्रकाश में इन ऐतिहासिक उपन्यासों में लेखन की सामग्री का नियोजित होना स्वाभाविक ही है। यह उपन्यास अठारहवीं शताब्दी के मराठा इतिहास की प्रसिद्ध ऐतिहासिक विभूति अहिल्या बाई के जीवन पर आधारित है।

संक्षिप्त कथा :

उपन्यास का आरम्भ माहेश्वर के आसपास के मालवा प्रदेश की अराजक परिस्थितियों के घटना-चित्र से होता है। यह वह युग था जब कि मुगल साम्राज्य एक ओर छिन्न-भिन्न हो गया था तो दूसरी ओर मराठा शक्ति का पूना से लेकर दिल्ली तक प्रभाव और आतंक था किन्तु राजकीय सुव्यवस्था का एक प्रकार से अभाव था। आये दिन राज-कर्मचारियों की मनमानी, चारों ओर डाकुओं का त्रास तथा मत्स्य-न्याय की घटनाएं घटती रहती थीं। ऐसी परिस्थितियों के बीच उपन्यासकार ने अहिल्याबाई के न्यायप्रिय और कुशल व्यवस्थापिका के व्यक्तित्व को उपयुक्त कथारस के साथ प्रस्तुत किया है। अहिल्या बाई ने उन्नीस वर्ष की अवस्था में पति के तथा बयालीस वर्ष की अवस्था में पुत्र मालेराव के निधन पर माहेश्वर के उत्तर और दक्षिण में विस्तृत राज्य का शासन संभालना आरम्भ किया जिसके उत्तर भाग की देख-रेख तुकोजी और दक्षिण की वह स्वयं करती थी। किन्तु सम्पूर्ण राज्य का लेखाजोखा एवं शासन-व्यवस्था वह स्वयं देखती थी। उपरिनिर्दिष्ट अराजक परिस्थितियों की छोटी-बड़ी

घटनाओं के बीच अहिल्या बाई की निर्णायक शक्ति एवं सुव्यवस्था के प्रयासों को प्रस्तुत करके लेखक ने उसके व्यक्तित्व को उभारा है। राज्य के भविष्य के लिए तुकोजी के पुत्र मल्हारराव को अपना उत्तराधिकारी बनाने की उनकी योजना थी। मल्हारराव उद्दण्ड स्वभाव का व्यक्ति था, किन्तु उसमें शौर्य और कार्य-शक्ति को लक्ष्य करके अहिल्याबाई उसे समुचित संस्कार देना चाहती थी। मल्हारराव डाकुओं की कुसंगति में पड़कर धीरे-धीरे स्वयं लूटमार करने लग जाता है।

इन परिस्थितियों के बीच तुकोजी लौटकर उत्तर में अनेक छोटे-बड़े युद्धों में संलग्न रहे और इधर अहिल्याबाई ने अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से गणपतराव, सिन्धूरी और आनंदी आदि अराजक तत्त्वों में यथेष्ट परिवर्तन लाती है, तो दूसरी ओर रामपुरा और भानपुरा के चन्द्रावत राजपूतों के विद्रोहों का स्वयं दमन करती है। इस प्रकार अराजक परिस्थितियों से प्रदेश को निरस्त करके वह न्यायपूर्ण राज्यव्यवस्था को ही नहीं प्रतिष्ठित करती अपितु मंदिरों के जीर्णोद्धार, निर्धनों के लिए अन्न और वस्त्र के वितरण के केन्द्र खोलना, मंदिरों को सांस्कृतिक केन्द्रों के रूप में प्रतिष्ठा आदि करके सुख शान्ति की स्थापना करती है। वृद्धावस्था में दौहित्र और दामाद की मृत्यु तथा पुत्री के सती हो जाने का मर्माघात उसे विचलित करता है, किन्तु कालान्तर में वह कर्तव्य-पालन में संलग्न हो जाती है। दूसरी ओर मल्हारराव अहिल्याबाई के स्नेह, वात्सल्य, समाशीलता, आदि व्यवहार के बावजूद भी नहीं सुधर जाता, फलतः उसे बन्दी बनाने को विवश होना पड़ता है। इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन की करुण कहानी को लिए हुए इस कर्तव्यनिष्ठ जन नेत्री का अवसान हो जाता है।

ऐतिहासिकता:

डा० वृन्दावनलाल वर्मा ने " परिचय " शीर्षक के अन्तर्गत जो

जो प्रस्तावनात्मक वक्तव्य दिया है, उसमें कथावस्तु के ऐतिहासिक स्रोतों को सुस्पष्ट कर दिया है। ऐतिहासिक घटनाओं एवं परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए उन्होंने ग्रान्ट डफ की " हिस्ट्री आफ द मराठाज ", श्री जी० एस० सर देसाई की " न्यू हिस्ट्री आफ द मराठाज ", डा० सर यदुनाथ सरकार की " फाल आफ द मुगल इम्पायर ", इरविन की " लैटर मुगल " इत्यादि इतिहास पुस्तकों से सामग्री ग्रहण की है।[1] इन ग्रंथों में अहिल्याबाई की शासन-योग्यता एवं धर्म-परायणता की भूरि भूरि प्रशंसा मिलती है, किन्तु उसे प्रकाशित करनेवाली कोई ऐतिहासिक सामग्री नहीं प्राप्त होती। उपन्यास में इस प्रशंसा से काम नहीं चल सकता। ऐसी स्थिति में सम्भवता के लिए प्रायः उपन्यासकारों को कल्पना का आश्रय लेने को विवश होना पडता है। किन्तु यहाँ उसने उक्त सामग्री को इतिहास-सम्मत बनाने के लिए ऐतिहासिक अनुसन्धान का ही कार्य किया है।

अहल्याबाई द्वारा भारत भर के तीर्थ स्थानों में मन्दिर और घाट बनवाने, कुओं और बावड़ियों के निर्माण, रास्तों की मरम्मत तथा नये मार्गों का निर्माण, अन्नसत्रों की स्थापना, प्याऊ स्थापित करना तथा धार्मिक केन्द्रों में विद्वानों, व्याख्याताओं तथा कथा-वाचकों की नियुक्ति आदि के जन-जागरण एवं लोक कल्याणकारी कार्यों का निर्देश मात्र उन ग्रंथों में है। उपन्यास में प्रस्तुत इनकी प्रचुर सामग्री लेखक ने " इतिहासाची साधनें " प्रथम भाग के ऐतिहासिक पत्रों, माहेश्वर दरबाची बातमी पत्रें, " इन्दौर गजेटियर ", " होळकर शाहीचा इतिहास ", वी० वी० ठाकुर कृत " लाईफ एण्ड लाईफ-वर्क आफ दि अहिल्या बाई ", डाक्टर उदयभानु कृत " देवी अहिल्याबाई,

---

१ अहिल्या बाई, परिचय, पृ० १

" पुण्य श्लोक देवी अहिल्या बाई, होल्कर की कैफियत, सर देसाई कृत " न्यू हिस्ट्री आफ् द मराठाज " भाग-१ और " दि मेन करेन्ट्स आफ् मराठा हिस्ट्री " आदि से ग्रहण करके [1] उसे इतिहास-सम्मत बनाया है।

पात्रों की ऐतिहासिकता की दृष्टि से लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है कि सिन्दूरी, आनन्दी और भोपत के नाम बदल दिये गये हैं, वैसे वे वास्तविक हैं। [2] तुकोजी, मल्हारराव, काशीराव, भारमल तथा महादजी सिन्धिया जैसे पात्र तो इतिहास प्रसिद्ध हैं। केवल गनपतराव (छद्म नाम दुर्गासिंह) का आधार डून्दोर गजेटियर है। इस गजेटियर में नाम घाट के पास भवन-निर्माण का तथ्य भी उल्लिखित है। [3] व्यापारियों से बलपूर्वक धन वसूलने आदि के तथ्य तो इतिहास-सम्मत हो सकते हैं, किन्तु उपन्यास में आनेवाली " हाथकुलाई " से सम्बंधित गनपतराव की घटना और आगे चलकर अहिल्याबाई तक उसका समाचार पहुंच जाना आदि घटनाएं इतिहास ग्रंथों में नहीं मिलतीं। अतः यह कहा जा सकता है कि डा० वृन्दावनलाल वर्मा को ऐसी सामग्री जन-श्रुतियों से प्राप्त हुई हो किन्तु ऐसा कोई स्पष्टीकरण उन्होंने नहीं दिया है।

उत्तरी भाग में तुकोजी होल्कर के सैनिक अभियानों, तथा व्यय के लिए उसकी अहिल्याबाई से निरन्तर धन की मांग इतिहास तथा प्रस्तुत उपन्यास में समान रूप से वर्णित है। किन्तु दोनों में परिस्थिति एवं अहिल्याबाई के व्यवहार में पर्याप्त अन्तर है। उपन्यास में तुकोजी की धन की निरन्तर मांग, [4]

---

1 देखिए, वही, अहिल्याबाई पृ० ४,५,६

2 वही, पृ० ५

(3) देखिए, वही, पृ० ६

(4) डा० वृन्दावनलाल वर्मा, अहिल्याबाई, पृ० २६ से २८, ११५, ११६

अकारण धन मांग करके निजी संग्रह [1] और अंततः १२ लाख रुपयों का निजी संग्रह किन्तु अहिल्याबाई की कटु प्रतिक्रिया का अभाव [2] और साथ ही, कभी मांग के एक अंश की पूर्ति तो कभी अस्वीकृति को प्रकाशित किया गया है। [3] गोविंद सखा राम सर देसाई ने अहिल्याबाई द्वारा धनपूर्ति की अस्वीकृति की स्थिति में तुकोजी होल्कर की कठिनाइयों एवं सेना को अभियानों के समय में भी अभाव ग्रस्त होने हेतु की विवशता को प्रकाशित किया है। [4] वर्मानी ने तथ्यगत इस भिन्नता के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। अतः यह कहा जा सकता है कि उपन्यास की नायिका के चरित्र को ऊंचा उठाने के लिए उन्होंने इस पक्ष को उपेक्षित करके तुकोजी के द्वारा युद्ध के बहाने बनाकर निजी धन-संग्रह के तथ्य से कल्पित किया है। अतः समग्रतया मूल्यांकन द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि एक आध छोटे-मोटे अपवाद को छोड़कर उपन्यास की प्रायः सभी घटनाएं, चरित्र तथा वर्णित तथ्य इतिहास सम्मत हैं और इसे विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है।

साहित्यिक विवेचन :

१ कथानक :

कथावस्तु के संक्षिप्त विवरण से प्रकट है कि इस उपन्यास का कथानक मालवा प्रदेश के एक भाग की अराजक परिस्थितियों तथा उनके बीच

१ अहिल्याबाई, पृ० १५४, १७० (२) वही, पृ० १८८

३ वही, पृ० १५४ और १७०

४

उभरते हुए अहिल्याबाई के व्यक्तित्व को संजोये हुए है। उपन्यास के कथानक की सफलता वस्तु-संगठन पर निर्भर करती है। इसकी प्रासंगिक कथाएं प्रायः समकालीन परिस्थितियों के विश्लेषण का कार्य करती हैं तथा वे आधिकारिक कथा के साथ इस प्रकार जुड़ी हैं कि कथानक सुसंगठित ही रहा है।

मुख्य कथा में अहिल्याबाई पति और तदनन्तर पुत्र के निधन के पश्चात् राज्य का शासन कुशलतापूर्वक चलाना आरम्भ करती है। राज्य के उत्तर भाग की देख-रेख तुकोजी होल्कर और दक्षिण की देख-रेख वह स्वयं करती है किन्तु दोनों प्रदेशों का लेखा-जोखा और निर्णय की अधिकारिणी वह स्वयं ही है। समयर्ह समय पर आनेवाली शासकीय समस्याओं का निराकरण वह बड़े विवेक के साथ करती हुई राज्य के भावी संचालन के लिए योजना बनाती है, और इस दृष्टि से मल्हारराव को समुचित संस्कार देना चाहती है। मल्हारराव उसकी योजनानुसार आचरण नहीं कर पाता। उसकी निरंकुशता एवं उद्दण्डता राज्य की अनेक समस्याओं का कारण बन जाती है। उधर बूढ़ासिंह, आनन्दी, सिन्दूरी आदि उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर सन्मार्ग पर लगते हैं। जीवन के अंतिम दिनों में दौहित्र और दामाद की मृत्यु एवं पुत्री का सती होना आदि घटनाएं उसे आघात पहुंचाते हैं और अंततः प्रजा का समुचित पालन जन-जागरण तथा धर्मानुसरण करती हुई वह जीवन लीला समाप्त करती है।

उपर्युक्त आधिकारिक कथा के साथ जुड़नेवाली ऐसी घटनाएं तथा कुछ प्रासंगिक कथाएं हैं जो उपन्यास की मुख्य कथा को गति देती चलती और अहिल्याबाई के व्यक्तित्व को उभारने में सहायक होती हैं। अम्बाड परगने की घटना, काशीराम तथा मल्हारराव के पारस्परिक विवाद के दो घटना चित्र,

भीपत और सिन्दूरी के साथ मल्हारराव की भेंट और उनसे मिलकर लूट-मार की योजना की कथाएं, सूलगांव की डकैती, गनपतराव की हाथ मुलाई वाली घटना, इन्दौर के बाजार की चोरी का माल बेचने की घटना आदि प्रासंगिक कथाएं या घटनाएं आधिकारिक कथावस्तु से सुसम्बद्ध हैं और उसे क्रमशः रोचक बनाते चलते हैं। अलग से जोडी हुई एक ही कथा जान पडती है और वह बदूसिंह और आनन्दी की है जो कि उपन्यास के मध्य भाग से आरम्भ होकर लगभग अन्त तक बीच-बीच में अपना झिल-मिल प्रकाश छोडती हुई चलती है। बदूसिंह (गनपतराव) से सम्बद्ध घटनाएं तो आधिकारिक कथा को आगे बढाती हैं, किन्तु आनन्दी से जुडी हुई अंतिम घटना आधिकारिक कथा से स्वतंत्र भी कहा जा सकती है। फिर भी लेखक की कुशलता इस बात में है कि वह मुख्य पात्र से सम्बन्ध कर के उसे सर्वथा असम्बद्ध नहीं होने देता।

" अहिल्याबाई " उपन्यास के कथानक की सर्वाधिक विशेषता कथा की रोचकता और कौतूहल जगाने की है। इसके लिए लेखक ने छोटे-मोटे अनेक घटना चित्र जोडकर इस प्रकार उन्हें मुख्य काम से सुसम्बद्ध किया है, कि वे ऐतिहासिक तथ्यगत शुष्कता को सरसता में परिणत कर देते हैं। बाडलापुर के देशमुख का पक्षपात और आगे चलकर अहिल्याबाई का न्याय,[1] गनपतराव की हाथ मुलाई का कर वसूलने की दोनों घटनाएं,[2] आगे चल कर गनपतराव का आत्म समर्पण[3] तथा उस पर आनन्दी की घोर प्रतिक्रिया - इसी विशेषता को लिए हुए हैं।

---

1 अहिल्याबाई, प्रकरण 1 (2) वही, प्रकरण 15,

(3) वही, प्रकरण, 21

६१ प्रस्तुत उपन्यास का कथानक सम्पूर्णतया स्वाभाविक है। राम-पुरा-मानपुरा में चन्द्रावत राजपूतों का विद्रोह तथा उनसे सतत संघर्ष और इन संघर्षों के बीच अहिल्याबाई की निजी प्रतिक्रिया अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से अंकित हुई है। इसी प्रकार भोपत को कारागार में डाल देने की आज्ञा पर उसकी प्रतिक्रिया और मल्हारराव के आचरण पर व्यंग्यात्मक कथन पर अहिल्या-बाई की डांट इत्यादि के वर्णन[1] अत्यंत ही मानवोचित एवं मार्मिक है। माता रत्नबाबाई के साथ मल्हारराव का दुष्ट व्यवहार, इस पर अहिल्याबाई द्वारा प्रतारणा तथा कुछ समय पश्चात् उनका मल्हार पर पुनः स्नेह की घटना बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित हुई है। अतः विश्वसनीयता का गुण उपन्यास में आदि से अन्त तक वर्तमान है। डा० वृन्दावनलाल वर्मा का कथा लिखने का ढंग इतना सहज और आडम्बरहीन है कि उसमें जिज्ञासा का गुण अन्त तक बना रहता है।

२ पात्र और चरित्र-चित्रण :

उपन्यास मानव-चरित्र का चित्र[2] माना जाता है। उपन्यास-कार कथोपकथन तथा घटनाओं के माध्यम से पात्रों का ऐसा चारित्रिक विश्लेषण करता है कि उससे कथा में प्रभाव की सृष्टि होती है। चरित्र-सृष्टि ही एक ऐसी विशेषता है जो उपन्यास को सामान्य कथा-कहानी या पौराणिक आख्यान से पृथक् करती है। प्रस्तुत उपन्यास में अहिल्याबाई, मल्हारराव, मारमल,

अहिल्याबाई

१ वही, पृ० १६

२ प्रेमचन्द – कुछ विचार, पृ० ४०

सिन्दूरी तथा गनपतराव मुख्य पात्र कहे जा सकते हैं। शेष, तुकोजी, रुक्माबाई, काशीराव, मीका, मोपल, आनन्दी, महादजी आदि गौण पात्र हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे पात्र हैं जो आवश्यकतानुसार उल्लेख मात्र बन कर आये हैं, उनके व्यक्तित्व का यथेष्ट विकास उपन्यास में नहीं हुआ है। नाना फडनवीस, बाउलापुरका देशमुख, अम्बाड का कमाविसदार, कथावाचक, मुक्ताबाई, दादुरनेक, मल्थू, टीपू, कवि कुशालीराय और मोरोपंत आदि इसी प्रकार के पात्र हैं।

अहिल्याबाई प्रस्तुत उपन्यास की नायिका है। न्याय और व्यवस्था स्थापित करने में उसका विवेक एवं धैर्य घटनाओं के माध्यम से व्यक्त किया गया है। वह स्वयं साहसी और वीर रमणी के रूप में भी पाठकों के समक्ष आती है। रामपुरा-भानपुरा के राजपूतों के विद्रोह का शमन वह स्वयं करती है। उसके व्यक्तित्व की सब से बड़ी विशेषता है उत्तेजनापूर्ण परिस्थिति में भी विवेक और संयम से काम लेना। मल्हारराव की उच्छृंखलता एवं उद्दंडता की स्थितियों में वह क्रोध के वशीभूत न होकर सावधानी के साथ उसे संभालने का यत्न करती है। यहाँ तक कि अपनी माता रुक्माबाई के साथ छीना-झपटी करने पर भी आवश्यकतानुसार क्रोध करती है और फिर तुरन्त स्वयं को संभाल कर मल्हार के साथ स्नेह और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करती है। इसमें संदेह नहीं कि अहिल्याबाई को उक्त प्रदेश में " देवी " या " माता " माना जाता था जिसे कथोपकथनों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, किन्तु डा० वृन्दावनलाल वर्मा की विशेषता इस बात में है कि उन्होंने उनके व्यक्तित्व को अतिमानवीय नहीं बनने दिया है - बेटे और दामाद के निधन और मुक्ताबाई के सती होने पर वह कुछ समय के लिये विचलित हो जाती है किंतु अपने आपको

संभाल कर पुनः राज-काज और लोक-कल्याण के कार्यों में संलग्न हो जाती है। जीवन के अन्तिम क्षणों तक बीच बीच में आने वाले निजी पारिवारिक जीवन के गम्भीर आघातों की मर्म-व्यथा को संजोये हुए वह जीवनलीला समाप्त करती है। उसका सहानुभूतिशील चरित्र मानवोचित अनुभूतियों में संयुक्त होकर कर्त्तव्यपरायणता से विचलित नहीं होता। इस प्रकार एक आदर्शवादी सृष्टि में मानवोचित दुर्बलताओं को दिखा कर लेखक ने उसे यथार्थ की भूमि से कभी भी अलग नहीं होने दिया है। यह लेखक की एक उल्लेखयोग्य उपलब्धि है।

मंदिरों, घाटों तथा जाम घाट पर यात्रियों के लिये भवन-निर्माण एवं अन्न-सत्रों की स्थापना आदि धार्मिक कार्यों से जनकल्याण कारी व्याख्या प्रस्तुत उपन्यास में की गयी है। वस्तुतः यह उसके धर्मभीरु स्वभाव को भी प्रकाशित करती है। इस धर्मशीलता के होते हुए भी अहिल्याबाई में साम्प्रदायिक उदारता है। निजाम राज्य से आये हुए मुसलमानों को मस्जिदों के निर्माण में समुचित सहायता देती है। गनपतराव की धनराशि को अर्थसंकट की स्थिति में राज्यव्यवस्था के लिये स्वीकार न करना उसकी धर्मभीरुता को और भी स्पष्ट कर देता है।

मल्हारराव उद्दण्ड और उद्धत चरित्र के रूप में हमारे सामने आता है जो कुसंग में पडकर और भी पतन के मार्ग में चला जाता है। अहिल्याबाई उसकी कार्यक्षमता एवं शौर्य को देख कर उसे उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी। अतः उसकी उद्दण्डता के प्रति क्षमाभाव अपना कर उसके परिष्कार का प्रयास बडी सहानुभूति के साथ करती, किन्तु असफल होती है। डाकू बघूसिंह और चोर मोपन का साथ उसे और भी बिगाड देता है। उद्धत स्वभाव के कारण ही आगे चल कर वह अहिल्याबाई की सहानुभूति को खो देता है। अतः वह सामन्त

.४ वर्ग की विकृति का प्रतिनिधित्व करता है। काशीराव का चरित्र भी इसी प्रकार का है। वह मद्यपान में ही अपनी शक्ति और समय गवां देता है। गनपतराव का चरित्र समकालीन अराजक परिस्थितियों के उद्घाटन के लिए अत्यंत सहायक कहा जा सकता है। " हाथ-सफाई " से अनियमित कर द्वारा वह लाखों रुपये एकत्र करता है। आरम्भ में वह मल्हारराव को भी अपने मार्ग में ले आता है, किन्तु आगे चलकर अहिल्याबाई के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसके जीवन में एक नया मोड आता है, जिसमें अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति अर्पित करते हुए वह आत्म-समर्पण करता है और अहिल्याबाई से अनुमति प्राप्त करके धर्माचरण में लगता है। वे सभी पात्र समकालीन परिस्थिति के विविध वर्गों के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं।

उपर्युक्त पात्रों का चरित्र-चित्रण घटनाओं के घात-प्रतिघात, कथोपकथन तथा विश्लेषणात्मक आदि तीनों ही पद्धतियों द्वारा किया गया है। सिन्दूरी का चरित्र एक सरल एवं निष्ठावान नारी के रूप में प्रस्तुत किया हुआ है जो अपनी सरलता एवं सच्चाई के कारण अहिल्याबाई की आत्मा में सहानुभूति तथा आगे चलकर विश्वास को अर्जित करती है। मारमल और भीखा इसी प्रकार अहिल्याबाई के विश्वास पात्र कर्मचारियों के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। इनमें से मारमल का चरित्र अधिक विकसित हुआ है। उसकी व्यवहारकुशल, वीरता, धीरता और विनयशीलता आदि मल्हारराव के प्रकरण में विशेष रूप से प्रकाशित हुए हैं। तुकोजी और काशीराव सामन्त वर्ग के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। तुकोजी का व्यक्तित्व एक कुशल सेनानायक के साथ ही एक लोभी सरदार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पूर्ववर्ती विवेचन में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि उसकी निरन्तर धन की मांगें परिस्थितिगत आवश्यकता से अधिक धनसंग्रह की लालसा से प्रेरित दिखाई गई है। यहां इतिहास की किंचित् उपेक्षा संभवतः अहिल्याबाई

के व्यक्तित्व के प्रभाव के कारण लेखक द्वारा हुई है । शेष पात्रों के व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं हो पाया है । वस्तुतः यह आवश्यक भी नहीं कहा जा सकता । उनका उल्लेख केवल तात्कालिक परिस्थितियों के विश्लेषण तथा कथा को यथोचित मोड़ देने के लिये हुआ है ।

उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में यह निष्कर्ष निकलता है कि पात्रों की चरित्र सृष्टि में उपन्यासकार पूर्णतया सफल दिखाई पड़ता है । यह अधिकांशतः घटनाओं के विनियोजन द्वारा ही हुआ है । कहीं कहीं इसके लिये लेखक ने विश्लेषणात्मक पद्धति का सहारा लिया है और यह मुख्यतः अहिल्याबाई के सन्दर्भ में ही हुआ है ।[1] ऐसे वर्णन प्रभावशाली ढंग के ~~सन्दर्भ में ही हुआ~~ कहे जा सकते हैं । वार्तालाप द्वारा चरित्र-चित्रण, जिसमें साथ साथ घटनाक्रम भी मन्द गति से चलता है, डा० वर्मा की उपन्यासकला का उत्तम उदाहरण है । एक दरबारी द्वारा जनकल्याण के कार्यों का विवरण देते हुए अहिल्याबाई की प्रशंसा करने पर उनकी प्रतिक्रिया यहां उल्लेखनीय है ।[2]

" आगे अहिल्याबाई से न सहा गया । चेहरे पर रुद्रता फैल गई ।

" बस, बस । " - उन्होंने फटकारा - " मना कर दिया है कि मुझे देवी कभी मत कहो । मेरी चाटुकारी मत करो, भगवान को भजो । "

फिर कुछ क्षण चुप रहीं, सन्नाटा छा गया । धीरे से बोली - " सारे भारत की जनता एक है । द्वेष राजाओं और नवाबों में है । एक-दूसरे

---

१ अहिल्याबाई, पृ० ८, १९, १९०

२ वही, पृ० ११७

की आड में एक दूसरे के प्रदेश का बुरा बतलाते हैं - - -। "

इसे नाट्यात्मक पद्धति का चरित्र चित्रण कहा जा सकता है। क्रिया-कलाप द्वारा चरित्र-चित्रण तो सर्वथा दिखाई पडता है। अतः प्रस्तुत उपन्यास के अंतर्गत डा० वर्मा की चरित्र-चित्रण कला की सफलता को असंदिग्ध रूप से स्वीकार किया जा सकता है।

३ कथोपकथन :

कथोपकथन उपन्यास कला का सहायक तत्त्व है। इसकी सजीवता कथा को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाने में अत्यंत सहायक होती है। इसके लिए लेखक ने प्रायः परिस्थितियों की पृष्ठभूमि के साथ कथोपकथनों की योजना की है। इनकी पहली उल्लेखनीय विशेषता उनकी सहजता एवं संक्षिप्तता की है, जिसके कारण कथा-प्रवाह में कहीं बाधा नहीं आने पाई। प्रायः सभी पात्रों के कथोपथन उनकी स्थिति, वृत्ति तथा बाह्य परिस्थिति के अनुरूप है। चरित्र-चित्रण के अंतर्गत प्रस्तुत अहिल्याबाई का कथोपकथन इसका उत्तम उदाहरण है। इनकी दूसरी विशेषता कथावस्तु को सम्यक् गति प्रदान करने की है। मल्हारराव और भारमल का संवाद-कथा को माहेश्वर के प्रांगण में ले जाता है [१] तो आगे चलकर मल्हार और अहिल्याबाई का संवाद [२] उसे सिमरोल के किले में ले जाता है। गोपत और मल्हार, मल्हार और बहूसिंह आदि के संवाद भी इसी विशेषता को लिए हुए हैं।

संवादों में व्यंग्य की योजना द्वारा कथावस्तु में अपूर्व प्राणवत्ता

१ अहिल्याबाई, प्रकरण, २, पृ० १-७, (२) वही, प्रकरण ४, पृ० ११,१२

मरने की कला भी एक-आध स्थलों पर दिखाई देती है। चोरी करते हुए पकड़े जाने पर जब भोपत को कड़ी निगरानी का दण्ड दिया जाता है, तो वह रोने लगता है। इस प्रसंग पर उसका मल्हारराव-विषयक व्यंग्य उल्लेखनीय है -[1]

" अहिल्याबाई बोली - " तुम स्वभाव से ही चोर हो। छोड़ दूँगी तो फिर यही करोगे। तुम्हारे साथ कठोरता नहीं की जायगी। पूरा भोजन मिलेगा - - - - - - परन्तु बाहर नहीं निकल सकोगे। "

" श्रीमन्त सरकार, मल्हारराव ने - - - "

" चुप। " - अहिल्याबाई ने भोपत को आगे बोलने न दिया। सिपाही उसे ले गये।

इस कथोपकथन में अहिल्याबाई के चरित्र का उद्घाटन, परिस्थिति गत वातावरण, व्यंग्य का चुटीलापन जो कथानक को यति और गति दोनों देता है आदि सभी गुण विद्यमान हैं।

कथोपकथन की चौथी विशेषता पात्रों के चारित्रिक उन्मेष की है। मल्हार और बटूसिंह, तथा आनन्दी और बटूसिंह के संवाद बटूसिंह की आश्रय की आकांक्षा तथा ईर्ष्यावृत्ति को व्यक्त करता है।

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त ये कहीं-कहीं विस्तृत होकर शिथिल हो गये हैं। ऐसे स्थलों पर आलंकारिक प्रयोग में शिल्पगत सफलता नहीं दृष्टिगोचर होती। बौद्ध-भिक्षुओं का निम्नलिखित कथन [2] इसी प्रकार

---

१ अहिल्याबाई, पृ० ९६ (२) वही, पृ० ६६

का है - " - - - - - मनुष्य के रक्त और पैसे से लड़ाई का आटा गूंदा है, अनाथों की आहों कराहों पर की आग पर उस आटे की रोटी सेंकी - पकाई जाती है - जो वादी-विवादी लड़ाई करते हैं वे इस रोटी से अपना पेट भरत हैं । "

४ वातावरण :

डा० वृन्दावनलाल वर्मा सम्बद्ध भू-प्रदेश से सुपरिचित हैं, साथ ही सामग्री के संकलन में उन्होंने पर्याप्त श्रम भी किया है । अतः देश और कालगत दोष तो कहीं नहीं आने पाया है । नर्मदा की घाटी, माहेश्वर, जामघाट, ओंकारेश्वर आदि के सभी छोटे-बड़े भौगोलिक वर्णन यथार्थ वातावरण की सृष्टि करते हैं । उपन्यास की मुख्य विशेषता युगीन परिस्थिति के अंकन की है । समकालीन अराजक परिस्थिति के वातावरण को सजीव रूप में प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने विवरण न देकर छोटे-मोटे घटना-चक्रों की योजना की है । इसके कारण कथानक में कहीं भी शिथिलता नहीं आने पाई है । वह सहज स्वाभाविक रूप में आगे बढ़ता है ।

ऐतिहासिक वातावरण के प्रस्तुतीकरण में उपन्यासकार को बड़ी सावधानी बरतनी होती है कि कहीं वह इतिहास-विरुद्ध न हो जाय । लेखक इसमें पूर्ण सफल इसलिए हुआ है कि वह ऐतिहासिक तथ्य को इतिहास सम्मत कल्पना के साथ संयुक्त करके प्रकाशित करता जाता है । वातावरण की तीसरी विशेषता समकालीन धार्मिक और सामाजिक लोक विश्वासों एवं मान्यताओं के सम्यक् आकलन की है । ये भी घटनाओं और उनके संक्षिप्त विवरणों के द्वारा ही प्रस्तुत हुए हैं । उनके लिए लेखक स्वयं अपनी ओर से कुछ नहीं कहता, पाठक

को सहज रूप से हृदयंगम कराता चलता है। आंत्री की दुर्गा को जिह्वामैंट, मान्धाता की पहाड़ी से गिरकर स्वर्ग प्राप्ति की मान्यता, विष्णुपुरी में मार्कण्डेय शिला पर लोट-पोटकर प्राण त्याग से यम-यातना से मुक्ति, खरगोन का चबूतरा, दण्ड और परशु की पूजा, दान-धर्म की व्यवस्था मन्दिर और धर्मशालाएं बनाना, सती होना आदि इसी कोटि की घटनाएँ है। ये निश्चय ही लोक-संस्कृति के जीवंत चित्रण में सफल हुई हैं।

५ भाषा-शैली :

वृन्दावनलाल वर्मा की भाषा प्रायः सरल प्रवाहमयी और सहज ही रही है। प्रस्तुत उपन्यास में " झांसी की रानी - लक्ष्मीबाई " एवं " माधवजी सिन्धिया " की भांति उनका सहज सरल रूप ही प्रायः दिखाई पडता है। किन्तु जहां वे किसी विशेष परिस्थिति अथवा व्यक्तित्व का निरूपण करते हैं वहां वे उसकी ध्वन्यात्मक-शक्ति, अलंकारिकता तथा कल्पना का प्रयोग करते हैं और आवश्यतानुसार सहज हो जाते हैं। एक उदाहरण यहां पर्याप्त होगा -

> " अंतिम वाक्य में इतनी सहानुभूति और मृदुलता थी कि मारमल को अपनी नस-नस में स्फूर्ति प्राप्त हुई। मारमल के चले जाने पर अहिल्याबाई ने शयन किया। " [१]

किन्तु जहां वे किसी प्राकृतिक दृश्य का और अहिल्याबाई के व्यक्तित्व का निरूपण करते हैं वहां आदि से अंत तक उसमें अलंकारिकता विद्यमान रहती है।

१ अहिल्याबाई, पृ० ५

यहां दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं ।

(१) " रात का तीसरा पहर अपनी अन्तिम घडियों पर था । माहेश्वर के नीचे नर्मदा कल-कल करती हुई बढी चली जा रही थी । नगर में गश्त लगानेवाले चौकीदारों की जागते रहो ! सावधान रहो । " से स्तब्धता चौंक-चौंक सी पडती थी । ठण्डी पवन-झकोरें उसे " सहला रही थीं । " [१]

(२) " उनकी आयु इस समय लगभग तिरसठ बरस की थी, केशों का रंग तिर चावरी, माथा चौडा, भौंहें लम्बी खिंची हुई, आंखें बडी-बडी, चेहरा गोल भरा हुआ । - - - - - - - ओंठ निश्चय और उदारता के द्योतक, शरीर सुडौल, कद मझोला, आंखों में ऐसी दीप्ति, ऐसा तेज जैसा योगियों में सुनते आये है । " [२]

कहीं-कहीं पर भाषा-शैली का इतना सहज और स्थानीय वातावरण का द्योतक रूप प्रस्तुत होता है कि वर्णन और भी प्रभावशाली बन जाता है । संक्षेप में एक-दो उदाहरण यहां पर्याप्त हैं :-

(१) बाइलपुर गांव में दिन-दहाडे जो कुछ हो रहा था उनको इस कहावत में कह दिया जाय - " जिसकी लाठी उसकी भैंस । " [३]

(२) देशमुख का बैर कौन बिसाये, इसलिए फरियाद को टाल दिया । [४]

---

१ वही, पृ० ८ (अहिल्याबाई)

२ वही, पृ० ८

(३) वही, पृ० १

(४) वही, पृ० २

(३) " बड़ो-बड़ों के दांत खट्टे कर दिये, फिर भी मेरा कोई मूल्य नहीं । "[1]

एक-आध स्थलों पर भाषा शैली के खटकने वाले प्रयोग भी मिलते हैं -

(१) सरलता का आतंक छाया हुआ था । (पृ० २३)
(२) आनन्दी ने अपना स्वर भोलेपन के सांचे में ढाल कर पूछा और भौंहें ऊपर उठाईं, भ्रूमध्य रेखा भी चढ़ी । (पृ० ६०)
(३) अहिल्याबाई कुक्षु और थकान की परवाह कभी नहीं करती थी ।(पृ०७१)
(४) यदि राजा को मालूम हो जाय कि बुझा चूना खा लूं तो तुरन्त मर जाय, और राजा का कष्ट दूर हो जाय । (पृ० १२३)

उपर्युक्त उदाहरणों में शब्द प्रयोग और वाक्य विन्यास ~~निर्बल~~ निर्बल ही नहीं कहीं कहीं असंगत भी प्रतीत होते हैं ।

समग्रतया देखने पर सहज, प्रवाहमयी और प्रसंगोचित भाषा-शैली का प्रयोग हुआ है । आवश्यकतानुसार कहावतों और मुहावरों के प्रयोग उसे और भी स्वाभाविक बना देते हैं । कहीं कहीं पर वाक्य कृत्रिमता का रूप भी धारण कर लेते हैं ।

(१) विचारों के मूढ और आचारों के रूढ होने पर ही विवाद उपस्थित होता है । (पृ० १४५)
(२) जब तक मन में उत्साह रहे, युवावस्था अखण्ड है । (पृ० १७६)

अहिल्या बाई
१ वही, पृ० ३

उद्देश्य और जीवनदर्शन :

जैसा कि " परिचय " में दिये गये लेखकीय वक्तव्य से प्रकट है स० १९५१ ई० इन्दौर में होनेवाले अहिल्योत्सव के उद्घाटन के निमित्त वहाँ जाने पर अहिल्याबाई पर कुछ लिखने के वचन का निर्वाह इस उपन्यास के लेखन का आरम्भिक कारण बना किन्तु अहिल्याबाई के उत्कृष्ट गुणों द्वारा लेखक का प्रभावित होना वस्तुतः उसकी मूल प्रेरणा थी । वर्मा जी ने स्वयं लिखा है कि " मैं उन्हें उस अँधेरे की प्रकाश-किरण मानता हूँ जिसे अँधेरा बार-बार ग्रसने की चेष्टा करता रहता रहा । " [1]

प्रादेशिक लोक विश्वास उसे " देवी " मानता था किन्तु वर्माजी ने उसका उल्लेख करके मानवीय भूमिका पर ही प्रस्तुत किया है । वर्माजी के अन्य उपन्यासों की ही भाँति एक उपन्यास का उद्देश्य भी भारतीय इतिहास के उज्ज्वल अतीत के अल्पज्ञात तथा उपेक्षित पृष्ठों के उद्घाटन का है और यह संक्षिप्त कथा तथा ऐतिहासिकता से सम्बद्ध विवेचन से स्पष्ट है । जो जीवन-दर्शन कथावस्तु के माध्यम से प्रस्तुत हुआ है, वह भारतीय संस्कृति की विचार धारा के सर्वथा अनुरूप ही इसे प्रस्तुत रहने वाली अहिल्याबाई की कतिपय सूक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं ।

(१) बिना बुद्धि और विवेक के श्रद्धा का कोई मूल्य नहीं, सविवेक श्रद्धा ही फलदायी होती है ।

(२) विचारों के गूढ और आचारों के रूढ होने पर ही विवाद उपस्थित होता है । (पृ० १४५)

---

1 वही, परिचय, पृ० ८

७३ (३) जब जीवन में कोई आनन्द उपलब्ध नहीं, तब धर्मानुचरण और कर्तव्यपालन ही चित्त को शान्ति दे सकता है। (पृ० १६७)

अहिल्याबाई को जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है उसके अनुसार धर्म भीरु होकर भी वह उसके अन्ध विश्वासों की कायल नहीं है किन्तु जीवन की व्यावहारिकता को लिये हुए हैं।

निष्कर्ष :
oooooooo

पूर्ववर्ती पृष्ठों के अन्तर्गत डा० वृन्दावनलाल वर्मा के तीन ऐतिहासिक उपन्यासों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है, उसके समग्रतया मूल्यांकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इतिहास और उपन्यास-कला के संयोजन, ऐतिहासिकता की सम्यक् रक्षा तथा कथानक के वस्तु-संगठन आदि के दृष्टिकोण से " झांसी की रानी " तथा तदनन्तर " अहिल्याबाई " उपन्यास जितने सफल दृष्टिगत होते हैं, उनकी तुलना में " माधव जी सिन्धिया " के वस्तु और शिल्प दोनों ही पक्ष निर्बल हैं। यह कहा जा सकता है कि भारत के राष्ट्रीय ऐक्य की सोद्देश्यता और उसका आग्रह सम्भवतः कलात्मक सर्जन एवं ऐतिहासिकता के सम्यक् विनियोजन में एक सीमा तक उत्तरदायी हैं। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित तथ्य यहां उल्लेखनीय हैं -

(१) उपर्युक्त तीनों उपन्यासों की सामग्री के संकलन में श्री वर्माजी ने पर्याप्त श्रम उठाया है, अतः ऐतिहासिक शोध के दृष्टिकोण से उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि प्राप्त सामग्री का वैज्ञानिक परीक्षण या विश्लेषण उन्होंने नहीं किया। विशेष कर " माधवजी सिन्धिया " की सामग्री

में लेखक की भावुकता अधिक सक्रिय कही जा सकती है ।

(२) तीनों उपन्यासों की कथावस्तु मुगल साम्राज्य की पतनावस्था के पश्चात् उत्पन्न अव्यवस्थित और अराजक परिस्थितियों से संबंधित हैं । यदि इनके ऐतिहासिक विस्तार पर दृष्टिक्षेप किया जाय तो उनका फलक १८वीं शती के उत्तरार्द्ध से आरंभ होकर १९वीं शती के पूर्वार्द्ध तक जाता है । इस प्रकार लगभग सौ वर्षों के भारतीय इतिहास की तीन अलग-अलग झांकियां इनमें मिल जाती हैं । वस्तुगत नैकट्य यदि देखा जाय तो " माधवजी सिन्धिया " और " अहिल्याबाई " परस्पर निकट रखे जा सकते हैं, किन्तु उद्देश्यगत साम्य की दृष्टि से " माधवजी सिन्धिया " और " झांसी की रानी " परस्पर अधिक निकट हैं । " अहिल्याबाई " में सोद्देश्यता का आग्रह नहीं है ।

(३) ये उपन्यास राष्ट्रीय आन्दोलनों के वातावरण के काल में लिखे गये । अतः श्री वर्माजी की एतद्विषयक वस्तुगत व्याख्या उनसे संप्रेरित कही जा सकती है ।

(४) तीनों का शिल्प पक्ष लगभग एक-सा है । वर्मा जी का कथा कहने का ढंग सहजता के गुण को लिए हुए है । यों देखा जाय तो कथा का चरित्रात्मक ढंग से प्रस्तुतीकरण तीनों में प्राप्त होता है ।

हिन्दी के विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों की भांति गुजराती साहित्य में श्री चूनीलाल वर्धमान शाह ने इस सरणि के उपन्यासों के लेखन में

सफलता प्राप्त की है। किन्तु उनका ऐतिहासिक क्षेत्र काल और प्रदेश की दृष्टि से भिन्न है। इसी प्रकार शिल्प भी किंचित् भिन्न रहा है, जैसा कि परवर्ती विवेचन से प्रकट है।

(ख) गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यास :

४ कर्मयोगी राजेश्वर :

" कर्मयोगी राजेश्वर " श्री चूनीलाल वर्धमान शाह का एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास है। श्री शाह एक प्रसिद्ध पत्रकार होने के साथ ही एक लोकप्रिय उपन्यासकार भी हैं। इन्होंने सर्वप्रथम हिन्दी अंग्रेजी और बंगाली के कतिपय उपन्यासों का अनुवाद किया एवं इसके पश्चात् स्वयं मौलिक-सर्जन की ओर प्रवृत्त हुए।[1] इनकी भाषा-शैली इतिवृत्तात्मक है, किन्तु उसके सरल, प्रवहमान और रोचक होने के कारण इनके उपन्यास काफी लोकप्रिय रहे हैं। गुजराती में विशुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से उपन्यास-लेखन में आपका योगदान सर्वोपरि है।

संक्षिप्त कथा :

" कर्म-योगी राजेश्वर " का कथानक सोलंकी वंश के संस्थापक राजा मूलराज सोलंकी के जीवन की उत्तरावस्था से सम्बद्ध है। इसकी कथा-वस्तु दसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के पश्चात् मूलराज के जीवन सूत्रों को ग्रहण कर चलती है। अपने पूर्वकाल में शासन-प्राप्ति के लिये किये गये अपने महापी एवं

१ डा० धीरूभाई ठाकर, अर्वाचीन गुजराती साहित्यनी विकास रेखा, पृ० ३७८

विलासी मामा और उसके उत्तराधिकारियों की हत्या के पाप उसे उत्तरावस्था में संतप्त करते हैं। परिणामतः वह राज्य-तंत्र से उदासीन होने लगता है। ऐसी अवस्था में लाट के सेनापति बारप के कुलक्षण हस्ति उपहार में देने के कारण रूष्ट हुए अपने राजकुमार चामुण्ड के आग्रह के वशीभूत हो लाट पर आक्रमण किया जाता है जिसमें उसे विजय प्राप्त होती है, किन्तु इससे उसे मन की शान्ति प्राप्त नहीं होती। अतः अपने इस मनःसंताप के निवारणार्थ वह हठयोगी कंथडी का मार्ग-दर्शन प्राप्त कर समस्त गुजरात में ज्ञान, संस्कार और धर्म के केन्द्र स्थापित करने का व्रत लेता है। इसके लिये वह उत्तरापथ से कतिपय ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें सम्मान सहित गुजरात में बसाता है तथा युवराज चामुण्ड को, उसके विवाहोपरांत, राज्य का कार्यभार देकर स्वयं श्रीस्थल (सिद्धपुर) रुद्र महालय में ईश्वरोपासना में लीन हो जाता है।

इस आधिकारिक कथा के साथ उपन्यास में चामुण्ड-पल्लवी, लल्ल-केतकी तथा विष्णुपदम् की प्रासंगिक कथाएं भी विद्यमान हैं। लाट-विजय में बंदी शत्रु-जन के रूप में चामुण्ड बारप की साली पल्लवी कुमारी, केतकी और तैलप गुरु विष्णु पदम् को प्राप्त करता है। अपनी गौरवास्पद विजय के प्रदर्शन के लिये वह इन्हें पाटण ले जाता है। पल्लवी के मादक सौन्दर्य के प्रति आसक्त होकर वह उसे प्राप्त करने के लिए अधीर हो जाता है। किन्तु बहिन-बहनोई के हंता के साथ प्रेम और विवाह का विचार उसे स्वीकार्य न था। वह पाटण से मुक्ति के लिये अधीर हो जाती है, किन्तु मूर्ति-प्रतिष्ठा के उत्सव पर अपेक्षित नृत्य के पश्चात् मुक्ति की अपेक्षा रानी चौला देवी एवं ~~विष्णुपद्म~~ विष्णुपदम् की मध्यस्थता से वह चामुण्ड के साथ सदैव के लिए विवाह-बंधन में बंध जाती है।

७७ शास्त्रीय विधि-निषेध का पालक, चामुण्ड-मित्र, लल्ल शर्मा पल्लवी की दासी केतकी के प्रति आकर्षित होता है एवं उसे प्राप्त करने के लिये आकर्षण-प्रयोग का आश्रय लेता है। किन्तु विष्णुपद्म अपने षड्यंत्र के लिये लल्ल का प्रयोग करने हेतु केतकी को लल्ल के यहां भेजता है, जहां अपने प्रेम की प्रबलता के कारण सारे विधि-निषेधों को तिलांजली देकर अपनी पत्नी शिवा की उपस्थिति में उसके साथ विवाह करने के लिये प्रस्तुत हो जाता है। शिवा स्वयं पल्लवी की सम्मति से इस विवाह को सम्पन्न करवाती है।

विष्णुपद्म लाट-पराजय के पश्चात् विजयी अपने गुप्तचर भद्र आदि की सहायता से चामुण्ड-पल्लवी आकर्षण और विवाह की स्थिति का लाभ उठाकर सैलप द्वारा खंभात और भरूच पर आक्रमण करवा देता है और अपने षड्यंत्र की विफलता पर कंथडी योगी के विचारों से प्रभावित हो मृत्युदण्ड से मुक्ति पा कंथडी योगी की शरण में शेष जीवन व्यतीत करता है।

ऐतिहासिकता :

प्रस्तुत उपन्यास में चामुंड-पल्लवी, लल्ल-केतकी तथा विष्णुपद्म की प्रासंगिक कथाओं के अतिरिक्त संक्षिप्त कथा में निर्दिष्ट प्रायः सभी घटनाएं इतिहास ग्रन्थों पर आधारित है।[1] विष्णुपद्म, केतकी, पल्लवी और

१ (१) श्री के० एम० मुन्शी, ग्लोरी दैत वाज गुर्जर देश, पृ० १६१-१७२
(२) गुजरात विद्यासभा, गुजरातनो इतिहास, पृ० १२८-१४७
(३) श्री एम० एस० कमेरियेट, हिस्टरी आफ् गुजरात, (LVII), भूमिकात्मक कथन, ६७

- आगे देखिए

व शिवा आदि पात्र कल्पना प्रसूत हैं। शेष पात्र ऐतिहासिक हैं, जिनकी ऐतिहासिकता का उल्लेख स्वयं श्री चुनीलाल वर्धमान शाह ने अपने उपन्यास के परिचयात्मक कथन में किया है।[1]

उपन्यास में अंकित गुजरात के इतर राज्यों के बीच पाटण की राजनीतिक सर्वोपरिता तथा लाट और मालवा के पड़ोसी राज्यों के प्रति सतर्कता[2] इतिहास-सिद्ध है।[3] चामुण्ड और पल्लवी की प्रासंगिक प्रेम कथा काल्पनिक है जिसमें एक मात्र चामुण्ड ऐतिहासिक पात्र है। इसमें व्यंजित शासक विलासिता एवं स्वेच्छाचारिता तत्कालीन राजपूत राजाओं की सामान्य मनोवृत्ति की द्योतिका है।[4] इसी प्रकार लल्ल-नेतकी की काल्पनिक प्रेम कथा भी उस युग के राजकर्मचारियों की स्वेच्छाचारिता को सूचित करती है। अतः इन दोनों कथाओं को ऐतिहासिक नहीं कहा जा सकता किन्तु उनमें प्रस्तुत वातावरण अवश्य ऐतिहासिक है।

नंथडी योगी, वयजल्ल देव एवं वीरमणि तत्युगीन जनता में

पिछले पृष्ठ से -

(४) डा० आ० के० धारेमा, गुजरातनो इतिहास, पृ० ९७-१०४

(५) डा० रामचंद्र ना० पंड्या, गुजरातनो सांस्कृतिक इतिहास, १२४-१२६

१ श्री चुनीलाल वर्धमान शाह, कर्मयोगी राजेश्वर, परिचय, पृ० ७ एवं उपर्युक्त संदर्भ।

२ देखिए, कर्मयोगी, राजेश्वर, पृ०

३ (क) श्री एम० एस० कमेसेरियेट, हिस्ट्री आफ् गुजरात, भूमिका, पृ० (LVII)
(ख) श्री० के० एम० मुंशी, ग्लोरी दैट वाण, गुर्जर देश, पृ० १६२

४ गुजरातनो इतिहास, पृ० १४७-४८

प्रवर्तित शैव और जैन धर्म की स्थिति की ओर इंगित करते हैं। समाज अपने वर्णाश्रम की परम्परा में विद्यमान था। मूलराज का राज्य अपनी लघुता के उपरान्त भी समृद्धि पूर्ण था।[1]

इस प्रकार घटनाएं, पात्र, और वातावरण की दृष्टि से "कर्मयोगी राजेश्वर", में ऐतिहासिक तथ्य प्रायः इतिहास के अनुरूप हैं। प्रासंगिक कथाओं में उपर्युक्त कल्पना तत्त्व ऐतिहासिक तथ्य की सुरक्षा में बाधक नहीं है, अतः इसे विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की कोटि में रखा जा सकता है।

साहित्यिक विवेचन :

कथावस्तु :

" कर्मयोगी राजेश्वर " का कथावस्तु सुव्यवस्थित और सुशृंखलित है। आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं की घटनाएं परस्पर इस प्रकार सुसम्बद्ध रूप में चलती हैं कि कहीं शिथिलता प्रतीत नहीं होती। उपन्यास के आरम्भ में मूलराज को उपहार में वारप के अशुभ हाथी देने से क्रुद्ध चामुण्ड उसे दण्ड देने के लिए लाट पर आक्रमण करता है और अपने अभियान में विजयी हो युद्धबंदी के रूप में पल्लवी कुमारी, केतकी और विष्णुपद्म को प्राप्त करता है। यहां से आधिकारिक कथा के साथ पूर्व निर्दिष्ट तीनों प्रासंगिक कथाएं सुशृंखलित रूप में आगे बढ़ती हैं। लल्ल-केतकी की कथा इनके विवाह की सम्पन्नता तक चलती है, जबकि चामुण्ड-पल्लवी तथा विष्णु पद्म की कथा उपन्यास के अन्त तक। चामुण्ड-पल्लवी की प्रणय-कथा द्वारा चामुण्ड की विलास-वृत्ति तथा, लल्ल

1 श्री मे० एम० मुंशी, ग्लोरी दैट वाज गुर्जर देश, पृ० १७१

और केतकी की कथा द्वारा ब्राह्मणों के दांभिक जीवन एवं आर्य नारी की सहिष्णुता का निरूपण करना लेखक का लक्ष्य प्रतीत होता है। विष्णु पद्म की कथा राष्ट्र-धर्म की अपेक्षा मानव धर्म की सर्वोपरिता का प्रतिपादन करने के लिये ग्रहण की गयी है। इस प्रकार आधिकारिक कथा के साथ तीनों प्रासंगिक कथाएं सोद्देश्य एवं सुसंबद्ध हैं।

लेखक ने उपन्यास में रोचकता और कुतूहल की सृष्टि के लिये कतिपय प्रसंगों और घटनाओं का आयोजन किया है। उपन्यास के आरम्भ में विष्णुपद्म और पल्लवी कुमारी के वार्तालाप द्वारा पल्लवी के मन में व्याप्त मृत्यु और मुक्ति के द्वन्द्व का निरूपण तथा विष्णुपद्म द्वारा मुक्ति के लिये आरम्भ किये प्रयत्नों की सूचना से लेखक पाठक के मन में कुतूहल उत्पन्न कर देता है। चामुण्ड का पल्लवी के प्रति आकर्षण और पल्लवी की उसके बंधन से मुक्ति की इच्छा पाठक को और भी जिज्ञासा शील बना देती है। चामुंड और पल्लवी के विवाह से यह कुतूहल कम होता है, तो विवाह के ही समय जंबक द्वारा ससैन्य सौरठ की ओर प्रयाण, दूसरी जिज्ञासा उत्पन्न कर देता है, जो विष्णुपद्म के लाट पर आक्रमण के षड्यंत्र तक निरन्तर विकासशील रहती है। इसी प्रकार विष्णुपद्म और गुप्तचर भद्र के परस्पर संदेशों का आदान-प्रदान, रानी चोला द्वारा उज्जैनी की गणिका के रूप में ब्रह्मचारी चपलल की परीक्षा, केतकी की प्राप्ति के लिये लल्ल का आकर्षण-प्रयोग और उसका दम्भपूर्ण व्यवहार काफी रोचक और मनोरंजनपूर्ण हैं। इस प्रकार उपन्यास में आद्योपान्त विविध प्रसंगों के आयोजन से लेखक कुतूहल और मनोरंजन के अविरल प्रवाह को बनाये रखने में सफल रहा है।

कथावस्तु की घटनाओं के निरूपण में लेखक उनकी सम्भाव्यता के विषय में भी सर्वथा सजग है। राजधर्म के कारण लाट-युद्ध में चामुण्ड को अपने

शत्रु वारप और उसकी पत्नी का हनन करना पड़ता है। किन्तु पल्लवी कुमारी के मादक सौन्दर्य को देख वह उसे प्राप्त करने के लिये आतुर हो जाता है। अपने बहिन-बहनोई के संहारक चामुण्ड के साथ पल्लवी के विवाह का विचार प्रथम दृष्टि में सर्वथा अस्वाभाविक लगता है। किन्तु कालान्तर में रानी देवी चौला देवी के सौहार्द भाव से, कुमारी वाविणी देवी के साहचर्य से एवं इस संकट-काल में एक मात्र आश्रय अपने गुरु विष्णुपद्म द्वारा प्रस्तुत राष्ट्र धर्म की नीति से उसे चामुण्ड के साथ विवाह के लिये सहमत कर लिया जाता है। विवाहोपरान्त वह संहार मूलक राजनीति से विलग रहने के लिये चामुण्ड से वचन ले लेती है, किन्तु गुजरात पर शत्रु के आक्रमण की स्थिति में और अपनी परिवर्तित अवस्था में अपने कर्तव्य का बोध होने पर वह स्वयं चामुण्ड को युद्ध के लिये विदा करती है। इन घटनाओं का निरूपण लेखक ने बड़े प्रतीतिकर एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। इसी प्रकार मूलराज की उत्तरावस्था में राज्यतंत्र से विरक्ति, कंथड़ी योगी का मार्ग दर्शन प्राप्त करना, तथा तदनुसार उत्तर से ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें गुजरात में बसाना, विष्णुपद्म का षड्यंत्र के उपरांत भी अपने को अपराधी न मानना, राजसी ब्रह्मचारी की रानी चौला द्वारा परीक्षा, आदि घटनाओं को लेखक ने सहज संभाव्य रूप में प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु के संयोजन में लेखक ने कलात्मकता के साथ अपनी तीव्र मनोवैज्ञानिक दृष्टि का भी समन्वय किया है। इससे कथावस्तु में एक अद्भुत आकर्षण और उसकी रसात्मकता में एक निखार आ गया है।

पात्र और चरित्र-चित्रण :

सौराष्ट्र के ग्रहरिपु और कच्छ के लाखा पर विजय प्राप्ति के बाद

मूलराज एक समर्थ और शक्तिशाली राजा के रूप में उपन्यास में प्रस्तुत होता है। लाट-विजय उसके सामर्थ्य की विजय पताका है, उसके " कर्म योगी राजेश्वर " का रूप इस विजय के पश्चात् उसके निष्काम भाव से राज्य संचालन, प्रजा के हितार्थ गुजरात में धर्म और ज्ञान के केन्द्रों की स्थापनार्थ उत्तरापथ के ब्राह्मणों के आमंत्रण, एवं विवाहित युवराज चामुंड को राज्य भार दे रुद्रमहालय में ईश्वर-भक्ति में जीवनयापन में निरूपित है।

नागर मंत्री जैयक सत्युगीन गुजरात के कर्णधार के रूप में चित्रित है। उसकी विश्वसनीयता और राज्य भक्ति अनुपम है। उसके इस गुण को लक्ष्य में रख कर ही मूलराज चामुण्ड को राज्यभार दे श्री स्थल रुद्रमहालय में जा बैठता है। राज्य-कार्य में जैयक सदैव सतर्क और दुरदर्शी है। विष्णुपदम् की गतिविधि पर संदेह होने पर वह चामुण्ड-पल्लवी के विवाह के लिए अपनी सहमति व्यक्त नहीं करता। यह उसकी सतर्कता का ही सुफल है वह विवाह के समय गुजरात और सौराष्ट्र की सेनाओं को एकत्रित करके स्तम्भतीर्थ और भृगुकच्छ पर तैलप के आक्रमण को विफल कर लाट को शत्रु के हाथों में जाने से बचा लेता है।

युवराज चामुण्ड एक उच्छृंखल और विलासी राजकुमार है। लाट पर आक्रमण उसीके आग्रह का परिणाम है। लाट-विजय में प्राप्त पल्लवी का सौन्दर्य उसकी प्रसुप्त कामनाओं को उद्दीप्त कर देता है और वही उसके जीवन का लक्ष्य बन जाती है। वह उससे अनन्य रूप से प्रेम करता है और उसके निर्देश के पालन में ही निजी जीवन की सार्थकता मानता है। उसीके कथन से वह युद्ध से विरत होता है और उसीके अनुरोध पर वह पुनः युद्ध में जा उपस्थित होता है एवं अपने राजकीय कर्तव्य की ओर उन्मुख होता है।

रानी चौला देवी एक उदात्त, बुद्धिवादी, एवं कला-निपुण

रानी है। राजकुमारी वाविणी एक चंचल, और उन्मुक्त मना बाला के रूप में चित्रित की गयी है। अपनी मुग्धता, और वाक्पटुता से वह पल्लवी कुमारी का विश्वास जीत लेती है। धनुर्विद्या के प्रयोग की शिक्षा में उसका उत्साह उसके भावी राजतंत्र की सूत्रधारिणी के समर्थ व्यक्तित्व का द्योतक होता है।

पल्लवी कुमारी एक अद्भुत लावण्य और सौंदर्य की धनी है। संगीत और नृत्य-कला में प्रवीणता उक्त सौन्दर्य के साथ उसकी प्रसिद्धि का कारण है। चामुंडराय तो उसके प्रथम दर्शन से और उसके गीत-नृत्य के श्रवणावलोकन से उसके लिये उन्मत्त हो जाता है। पल्लवी का जीवन आत्म संघर्ष की जीवन्त कथा है। आरंभ में वह मृत्यु और मुक्ति के संघर्ष का सामना करती है, तो नृत्य के पश्चात् मुक्ति और चामुंड के साथ विवाह का संघर्ष उसे आ घेरता है। विधि उसे चामुंड के साथ विवाह सूत्र में बांध देती है, तो अपने विवाहित जीवन में प्रेम और राजनीति का संघर्ष आ उपस्थित होता है और उसे लोकहित को मान्य रख कर समर्पित होना पडा है। इस प्रकार पल्लवी का चरित्र संघर्ष और समर्पण दोनों की एक मनोज्ञ कहानी सा बन जाता है।

इन पात्रों के अतिरिक्त अन्य पात्रों का चरित्र-चित्रण भी सम्यक् रूप से किया गया है। कंथडी योगी एक समर्थ क्रांत द्रष्टा के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। उनका ज्ञान योग और कर्म के ठोस धरातल पर निहित है। आत्म-कल्याण की कामना की अपेक्षा तदर्थ आचरण पर उनका आग्रह जीवन के प्रति उनके सम्यक् दर्शन का परिचायक है। उनकी इस दृष्टि के सामने पापी से पापी मां के सामने शिशु की भांति अपनी आत्म-व्यथा खोल कर रख देता है। मूलराज और विष्णुपद्म इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। लोक-दृष्टि में विलासी दिखने वाले

वयजल्ल देव के वास्तविक तप और ब्रह्मचर्य की सच्ची परख इन्हें ही थी, जो परीक्षित होने पर चरितार्थ होती है। जैन मुनि वीरगणी का भी जैन शास्त्रानुसार एक यथार्थ वीतराग मुनि के रूप में सम्यक् चित्रण हुआ है।

पल्लवी, विष्णुदत्त और केतकी सर्जन के मूल में निहित लेखक के निजी लक्ष्य और उसमें लेखक की सफलता के सम्बन्ध में पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम यह उल्लेख कर आये हैं कि इनके द्वारा लेखक राष्ट्रवाद और मानवतावाद सम्बन्धी अपने विचारों को पाठकों के सामने सुनियोजित रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। १९३५ में प्रकाशित इन विचारों से लेखक पर गांधीजी के विचारों का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है।

उपर्युक्त विवेचन से प्रकट है कि चरित्र-चित्रण की कला में लेखक पूर्णतया सफल हुआ है। इसके लिये उन्होंने यथावश्यक सभी पद्धतियों का समुचित प्रयोग किया है। मुख्यतया लेखक ने वर्णनात्मक पद्धति का आश्रय लिया है। पात्रों को उपन्यास में प्रस्तुत करने के साथ ही लेखक स्वयं उनका चित्रात्मक वर्णन प्रस्तुत करने लगता है। इस प्रकार पात्रों का प्रथम दर्शन में ही काफी व्यन्यात्मक परिचय हो जाता है। इसके उपरांत घटना और प्रसंगों के घात-प्रतिघात से उन पर पड़े प्रभाव और प्रतिक्रियाओं का भी वह वर्णन करता जाता है। उदाहरणार्थ उपन्यास के आरंभ में पल्लवी का चित्रण द्रष्टव्य है -
" पल्लवी शत यौवना मुग्धा थी। उसके वर्ण में गौरता की अपेक्षा रक्तिमा अधिक थी। अवयव सुप्रमाणता से युक्त थे। देहयष्टि ऊंची होने से, उसकी तनुलता में मुग्धता की अपेक्षा तरुणाई भाव विशेष आभासित होता था, किन्तु मुख पर दृष्टि डालने वाले को अधखिली कलिका की सी मुग्धता प्रतीत हुए बिना

नहीं रहती । उसके अंगोपांग में सौन्दर्य था, किन्तु उसकी अपेक्षा लावण्य अधिक था । "[1] यहाँ लेखक ने पल्लवी के सांगोपांग सौंदर्य और लावण्य का एक मनोरम चित्र प्रस्तुत कर दिया है और साथ ही इसे देखने वाले पर प्रभाव की व्यंजक अभिव्यक्ति भी । इसी प्रकार चामुंड, वाविणी, चौलादेवी, कंथडी योगी, वयजल्लदेव आदि के भी शब्दचित्र और आकृति-वर्णन बहुत ही समीचीन हैं ।

वर्णनात्मक पद्धति के अतिरिक्त लेखक ने नाट्यात्मक शैली का भी सम्यक् उपयोग किया है । उपन्यास के प्रारंभ में पल्लवी और विष्णुपद्म का कथोपकथन पल्लवी के मृत्यु अथवा मुक्ति के लिये आत्मसंघर्ष परायण होने का एवं विष्णुपद्म के कूटनीतिज्ञ होने का स्पष्ट परिचय करा देता है । तदनन्तर चामुंड और पल्लवी का वार्तालाप पल्लवी के विदग्ध वाक्पटुत्व एवं उसकी संगीत-नृत्यकला की विपुलता और चामुंड की रत्यासक्ति और विलासिता का परिचायक है । इसी प्रकार मूलराज और चौलादेवी का, कथोपकथन मूलराज की विरक्ति का, वंदियों की दासता के सम्बन्ध में चौलादेवी और चामुंड का संवाद चौला के मानवीय और उदात्त दृष्टिकोण-सम्पन्न होने का तथा चामुंड का पल्लवी के प्रति आसक्त होने का, और मूलराज और कंथडी का कथोपकथन मूलराज के शांति के इच्छुक और योगी कंथडी के कर्मठ योगी होने का तथा वयजल्लदेव के राजसी वातावरण में रहते हुए भी नैष्ठिक ब्रह्मचारी होने का बोध कराते हैं । ये कथोपकथन सम्बद्ध पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के उद्घाटन के लिए स्वयं स्पष्ट और पर्याप्त हैं । अतः पात्रों के चरित्र-चित्रणगत शिल्प में लेखक सफल कहा जा सकता है ।

१ श्री० चु० व० शाह, कर्मयोगी राजेश्वर, पृ० १९-२०

कथोपकथन :

जैसा कि उपर्युक्त उदाहरणों से भी प्रकट है कि श्री चुनीलाल वर्धमान शाह ने रोचकता और सजीवता की सृष्टि के लिए सरस और मनोरम कथोपकथनों की योजना सफलता पूर्वक की है। पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं के उद्घाटन में इनकी क्षमता के अनेक प्रसंग पात्रों के चरित्रचित्रण विषयक विवेचन के अंतर्गत निर्दिष्ट किये जा चुके हैं। उनमें भी विष्णुपद्म और पल्लवी का संवाद[1] विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसमें चामुण्ड की पल्लवी के प्रति अत्यासक्ति और विष्णुपद्म की कूटनीतिज्ञता सशक्त रूप में व्यंजित है।

" कर्मयोगी राजेश्वर " के कथोपकथनों की द्वितीय विशेषता कथावस्तु को गतिशील बनाने की है। पल्लवी और विष्णुपद्म के संवाद चामुण्ड के साथ पल्लवी के विवाह की कथा को अग्रसर करते हैं। तृतीयतः ये आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं के सूत्रों को भी निर्दिष्ट करते चलते हैं। भूलरान और कंथडी योगी चामुण्ड को युद्ध के लिए प्रेरित करनेवाला बल्लभी का कथन तथा पल्लवी और विष्णुपद्म के संवाद इसी विशेषता से युक्त हैं। चौथे पात्र और प्रसंगों के अनुरूप इनकी भाषा तथा आकार-प्रकार में समुचित परिवर्तन भी दृष्टि-गोचर होता है। श्री देवी और वाविणी, वाविणी और पल्लवी तथा लल्ल और केतकी के कथोपकथन इसके सुन्दर उदाहरण हैं। वाविणी स्वभाव से विनोदी है, अतः वहाँ विनोद-विदग्धता का पुट दिखाई पडता जब कि लल्ल और केतकी के वार्तालाप में कूटनीतिज्ञता और वाक्पटुता का सन्निवेश है।

अतः उपर्युक्त विवेचन से प्रकट है कि प्रस्तुत उपन्यास में संवादों की

१ कर्मयोगी राजेश्वर, पृ० २१५

योजना कलात्मक उत्कर्ष के साथ हुई है। उनमें मनोवैज्ञानिक विशेषता, चुस्ती को गतिशीलता देने की क्षमता और आवश्यकतानुसार हास्य-व्यंग्य के प्रयोग के सभी अपेक्षित गुण विद्यमान हैं। पात्रों की चरित्र-सृष्टि में भी वे सहायक हुए हैं। निष्कर्षतः इस दृष्टि से श्री चुनीलाल वर्धमान शाह का यह उपन्यास सफल ही कहा जायगा।

वातावरण :

कथावस्तु में निर्दिष्ट मूलराज सोलंकी का व्यापक प्रभाव एक वातावरण की सृष्टि करता है। इसके लिए उपन्यासकार ने पार्श्ववर्ती राज्यों के राजाओं से प्राप्त उपहारों एवं सम्मान के दो प्रसंग प्रस्तुत किये हैं। प्रथम उपन्यास के आरंभ में आता है जिसमें गुजरात, कच्छ और सोरठ के राज्यों से उसकी मैत्री स्थापित होती है। द्वितीय में चामुण्ड के विवाह के समय उनकी अपार उपहार-राशि से प्रभावित जनता को चित्रित किया गया है। इसी प्रकार लाट-विजय पर पाटण की राजभक्त प्रजा का उल्लास भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। विजयी युवराज के नगर-प्रवेश के समय प्रजा सोल्लास उसके स्वागत के लिए निकल पड़ती है। यहाँ पाटण के श्रेष्ठवर्ग के लोग राजमहल के मार्ग के दोनों ओर मोतियों की न्योछावर से विजयी चामुण्ड का स्वागत करते हैं। यह प्रसंग मनोरम चित्रण से युक्त है।

उस समय की धार्मिक स्थिति का निरूपण, त्रिमूर्ति-प्रासाद में मूर्ति-प्रतिष्ठोत्सव, उत्तरापथ के ब्राह्मणों का सम्मान और उनकी स्थापना, ब्रह्मचारी वयजल्लदेव के स्नानागार के जल के लिये प्रजा का आकर्षण और रानी द्वारा ब्रह्मचारी की परीक्षा जैसे प्रसंगों द्वारा किया गया है। ब्रह्मचारी

की परीक्षा के समय रानी चौलादेवी उज्जयिनी की गणिका के वेष में शिव-पार्वती के विपरीत रति-प्रसंग के पद की स्पष्टता करने के प्रयत्न में ब्रह्मचारी द्वारा मुंह की पिचकारी से अपमानित हो वह उसके नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की यथार्थता के विषय में आश्वस्त हो जाती है किन्तु पिचकारी से उसके शरीर पर कोढ़ का उत्पन्न होना और उसके उपचार के लिये ब्रह्मचारी के स्नानागार के जल का सेवन, वैज्ञानिक दृष्टि से प्रतीतिकर नहीं लगता। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक यहाँ लोक-मानस के अंध-विश्वास का निरूपण करने के लिये ही प्रयत्नशील है। उपर्युक्त प्रसंगों द्वारा तत्युगीन लोगों की धार्मिक आस्था, अंध-विश्वास आदि का लेखक ने सम्यक् निरूपण किया है।

गुजरात के तत्युगीन सामाजिक और आर्थिक वातावरण को प्रस्तुत करने के लिये यद्यपि उपन्यास में कोई अवकाश नहीं था, तथापि लल्ल केतकी के प्रसंग से उच्चवर्ण वालों के दांभिक जीवन की अभिव्यक्ति लेखक ने अवश्य की है। लाट विजय पर चामुंड का मुक्ता-मालाओं द्वारा स्वागत और जनसाधारण का उल्लास मुखांशों में तत्कालीन आर्थिक सम्पन्नता को ध्वनित करते हैं। उपन्यास के अंत में संभात और भरूच में युद्ध के दृश्यों का भी जीवंत निरूपण दृष्टिगत होता है। सारतः उपन्यास में वातावरण के निरूपण में लेखक के प्रयत्न सफल कहे जा सकते हैं।

भाषा-शैली :

प्रस्तुत उपन्यास में प्रयुक्त श्री चुनीलाल वर्धमान शाह की भाषा सरल, मनोरम और प्रवहमान है। उसमें व्याप्त सरलता और सौष्ठव जन साधारण से

शिष्टमंडल तक को परितुष्ट करते हैं। यह आपकी भाषा की विशेषता है कि उसमें अरबी-फारसी के शब्दों का अधिक व्यवहार नहीं दिखता, प्रत्युतः प्रचलित एवं लोक प्रचलित संस्कृत-शब्दावली का उन्मुक्त प्रयोग मिलता है। मुख्यतया लेखक ने वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग किया है। इसके द्वारा लेखक उपन्यास की विषय-वस्तु को जीवंत स्वरूप प्रदान करने में काफी सफल रहा है। कतिपय पात्रों के शब्द-चित्र, आकृति-वर्णन और दृश्यांकन इसके सुन्दर प्रमाण के रूप में उद्धृत किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए राजसी तपस्वी नैष्ठिक ब्रह्मचारी वयनल्लदेव का चित्रांकन द्रष्टव्य है। " कुछ क्षण पश्चात् संगीत बंद हुआ और सदानंद आया। उसके पीछे रेशमी मगवा कपड़ा पहने, कंठ में पुष्पों की मालाएं धारण किये, और सुगंध के महकते प्रचंड शरीरवाला वयनल्ल देव आया। - - - - तीस वर्ष के युवक वयनल्ल देव के गौर मुख पर ब्रह्मचर्य का तेज तो था ही। परन्तु इससे भी विशेष उस मुख मण्डल की रेखाओं में आलोकित निर्दोषता खेल रही थी। सुवासित तेल से महकते उसके काले केश और दाढ़ी के बालों से वह भव्य लगता था। इस भव्यता में उस मुख की सरलता दिव्यता का तेज भर रही थी।[1] ब्रह्मचारी वयनल्ल देव के इस शब्द-चित्र में उनकी बाह्य और आभ्यंतरिक विशिष्टताओं का उद्घाटन लेखक ने बड़ी क्षमता के साथ प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार कतिपय प्रसंगों और दृश्यों का वर्णन भी लेखक ने बड़ी कुशलता से किया है। इनमें पाटण का दृश्यांकन, प्रतिष्ठोत्सव पर पल्लवी कुमारी का नृत्य, सरस्वती-तट पर कृषिकुमारों और ब्राह्मणों का आवास आदि के चित्र पाठक के मानस पटल पर झूलने लगते हैं। " आंधावाड़ी में "

---

1 श्री चुनीलाल वर्धमान शाह, कर्मयोगी राजेश्वर, पृ० २०५

चामुंड के सम्मुख पक्षियों की कौतुकपूर्ण लीलाओं का तो इतना जीवन्त और आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया गया है कि विरह-विदग्ध चामुंड भी उन्हें देख कर अपना विरह मूल उनकी लीलाओं में खो जाता है।[1]

लेखक की नाट्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक शैली की विशिष्टताओं का परिचय हम " चरित्र-चित्रण " और " कथोपकथन " के संदर्भ में दे आये हैं। इन ~~दोनों~~ दोनों शैलियों का लेखक ने सम्यक् प्रयोग किया है। पल्लवी, विष्णु-दत्त, और मूलराज के संवादों में कतिपय स्थलों पर इसके प्रमाण प्राप्य हैं। उदाहरण के लिए कर्मयोगी मूलराज चामुंड के विवाह के पश्चात् लाट पर तैलप के आक्रमण के समाचार प्राप्त करता है, तो उसका मन द्विविधाग्रस्त हो जाता है। राजधर्म शत्रु का सामना कर देश की सुरक्षा का आग्रह करता है, किन्तु उसका मन राजधर्म का पालन करने से खिन्नता का अनुभव करता है। मंत्रीश्वर जंबक उसे कर्मयोगी राजा के धर्म से च्युत नहीं होने देता। मूलराज और मंत्रीश्वर जंबक का उपर्युक्त स्थिति सम्बन्धी कथोपकथन लेखक की नाट्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक शैलियों का उत्तम उदाहरण है।[2]

इस प्रकार श्रीशाह की भाषा काफी समर्थ और चित्रात्मक है। उनकी शैली की परिमार्जनशीलता और प्रवहमानता उनकी सफलता के मुख्य आधार हैं।

उद्देश्य और जीवन-दर्शन :

प्रस्तुत उपन्यास के सर्जन में लेखक का मुख्य उद्देश्य कर्मयोगी मूलराज

---

१ श्री कृष्णलाल वर्धमान शाह, कर्मयोगी राजेश्वर, पृ० २०५

२ वही, पृ० २८२-२८४

के जीवन की अभिव्यक्ति है। पूर्व जीवन में कुशल-शासन के परिणामस्वरूप स्थिर एवं समृद्ध राज्य की स्थिति के चित्रण के उपरान्त उसे मनःशान्ति के लिये लोक-कल्याण के कार्यों की ओर प्रवृत्त करके लेखक अपने लक्ष्य में सर्वथा सफल रहा है। इसके साथ ही वह बाह्याचार की असारता व्यक्त करता है और निष्काम कर्म के आचरण में निहित आत्म-कल्याण के मार्ग की ओर इंगित करता है।

राज्य-धर्म, राष्ट्र-धर्म और मानव-धर्म की विवेचना करते हुए लेखक ने यह प्रतिपादित किया है कि मानव-धर्म राष्ट्र-धर्म से महान है। अंततः सभी तंत्र मानव-कल्याण के लिये हैं। राष्ट्र -धर्म मानव धर्म की शाखा के रूप में और मानव-हितसाधक के रूप में ही ग्राह्य है। इसके विपरीत यदि राष्ट्र मत्स्य-न्याय के पथ पर जाय, तो वह मानव का संरक्षण और उसके हित की सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। अतः मानव-धर्म के " जीओ और जीने दो " के सिद्धान्त का अनुसरण करनेवाले राष्ट्र आत्म-संतुष्ट और स्वाश्रयी होकर मानव के हित-साधक हो सकते हैं, मत्स्य-न्याय का अनुसरण करनेवाले नहीं। स्पष्टतः इससे लेखक पर गांधीजी के मानवतावादी विचारों का प्रभाव दृष्टिगत होता है। अपने इन विचारों की अभिव्यक्ति के लिये लेखक ने विलक्षणपद्म की सृष्टि की है, और उसमें वह पूर्णतया सफल रहा है।

१ राजहत्या :

" राजहत्या " बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए गुजरात के राजा अजयपाल (११७३-११७६) के स्वल्प राज्यकाल पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास है। इस काल में भी प्रजा में और शासक वर्ग में यह मान्यता थी कि " राजपद " वैयक्तिक विलासिता का साधन नहीं है, वरन् प्रजा की रक्षा एवं

देश की समृद्धि बनाये रखने का उत्तरदायित्व है। इसी सिद्धान्त के अनुसार मूलराज, चामुण्डराय और दुर्लभ सेन जैसे राजाओं ने उत्तर-काल में संन्यास ग्रहण किया एवं इसी भावना को लक्ष्य में रख कर उपर्युक्त सिद्धान्त के विरुद्ध आचरण करने वाले राजाओं का संहार कर देश और प्रजा को उनकी निरंकुशता से बचाने वाले वीर पुरुष भी हुए हैं। इस दिशा में सर्व प्रथम उल्लेखनीय है, मूलराज सोलंकी जिसने चावडा वंश के अंतिम राजा विलासी और मदांध सामन्त-सिंह का हनन कर देश को हीन राज्यत्व से बचाया। इसी प्रकार कुमारपाल के पश्चात् सिंहासनारूढ अविवेकी और क्रूर अजयपाल के अत्याचारों से प्रजा को मुक्ति दिलानेवाला था प्रतापमल्ल।[1] यह मुक्ति-गाथा ही प्रस्तुत उपन्यास " राजहत्या " की कथावस्तु है।

संक्षिप्त कथा :

गुजरात के प्रतापी राजा कुमारपाल के निःसंतान होने के कारण उनके उत्तराधिकारी के रूप में उनके गुरु हेमचन्द्राचार्य के आदेश के अनुसार उनकी इच्छा उनकी पुत्री लीलावती के कुमार एवं भालोर के युवराज प्रतापमल्ल को सिंहासनारूढ करने की थी, किन्तु एक पक्ष महाराज कुमारपाल के छोटे भाई के पुत्र अजयपाल को उनके उत्तराधिकारी के रूप में ग्रहण किये जाने का समर्थक था। कुमारपाल की मरणासन्न अवस्था में दण्डनायक आंबड मेहता भालोर से लीलावती देवी को प्रतापमल्ल के साथ पाटण बुलाते हैं, किन्तु जैन धर्मावलम्बी अपरिग्रही लीलावती अवांछनीय संघर्ष को टालने के लिये अपने पुत्र को साथ न लाकर स्वयं अकेली ही पाटण आती है। उसका महत्वाकांक्षी पुत्र प्रतापमल्ल इस अवस्था में

1 श्री चुनीलाल वर्धमान शाह, राज हत्या, परिचय

योग्य मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिये पालीताणा वाहड मेहता के पास पहुंच जाता है। वहां भी उसे राजकीय संघर्ष से दूर रहने की सम्मति मिलती है।

इधर अजयपाल शाकंभरी के मारवाडी राजपूत सैनिकों की सहायता से अपनी योजना के अनुसार कुमारपाल की अपेक्षित मृत्यु के समय सभी महत्त्वपूर्ण दुर्गों और स्थलों पर अधिकार कर सिंहासनारूढ हो जाता है। पाटण की जैन धर्मानुयायी प्रजा को अपनी सेना की अवगणना कर बाहरी सेना की सहायता से राज्य हस्तगत करना अपमानजनक लगता है। परिणामतः दण्डनायक आब्बड मेहता, महामंत्री कपर्दी एवं मंत्रीमण्डल के सभी जैन मंत्री अपना पद-त्याग कर देते हैं। अजयपाल अपने विश्वस्त अमात्य सोमेश्वर की सम्मति से कपर्दी को महामंत्री-पद के लिये मनाता है। अजयपाल शैवधर्मी था, यह सोच कुमारपाल के समय का पीड़ित एक वणिक् राज्य द्वारा दण्ड में यूका विहार के लिये ग्रहण की अपनी भूमि और सम्पत्ति की न्याय की अपेक्षा से मांग करता है। अजयपाल उसे यूका-विहार और मूक-विहार की भूमि अपने गृह-निर्माण के लिये दे देता है। उधर महामंत्री कपर्दी के भतीजुवाड़ा के किलेदार को भाणमती गणिका के साथ किये अपकार्य के लिये बुलाये जाने पर क्रुद्ध हो अजयपाल उसे उबलते तेल में डाल उसकी मृत्यु का कारण बनता है। इससे समस्त जैन समाज क्षुब्ध हो जाता है। पंडित रामचन्द्र उसे अविचल भाव से सत्य की रक्षा के लिये अटल रहने का उपदेश देते हैं, तो उन्हें छल से राज-महल में बुलवाकर अग्नि के समान तपते ताम्रासन पर बैठाकर उनकी हत्या कर देता है। इससे तो पाटण की समस्त प्रजा विक्षुब्ध हो राजमहल की ओर उमड पडती है, किन्तु अजयपाल पश्चाताप के बहाने वहां से सोमनाथ-यात्रा पर निकल पड़ता है। उसकी रानी नायिकी देवी प्रजा के प्रतिनिधियों से मिल कर उन्हें शान्त करती है। किन्तु यात्रा से लौटने पर

सालण मांड के प्रसंग से वह जैन मन्दिरों की सुरक्षा का भाव व्यक्त करता है, इस पर सभी श्रावकों के साथ आबंड मेहता के राजा को नमन न करने से क्रुद्ध हो वह उसे सैनिकों से मरवा देता है। इससे पाटण की प्रजा पुनः विक्षुब्ध हो उठती है।

नालोर का युवराज प्रताप मल्ल अपने पिता के निधन पर सिंहासनारूढ हो स्वयं राजा हो जाता है। पाटण की इस अवस्था से वह दुःखी हो अत्याचारी राजा से प्रजा की रक्षार्थ उसकी हत्या के लिए प्रयत्न करता है। इसी समय कुमारपाल के अंग रक्षक काशीवासी भीमसिंह के पुत्र एवं अजयपाल के अंग रक्षक बीजलदेव की एकाकी संतान देमती (देवमती) के साथ प्रतापमल्ल का गांधर्व विवाह हंसे हो जाता है। प्रताप मल्ल पहले अजयपाल से युद्ध की योजना करता है, किन्तु बाद में आबू के राजा धारावर्ष देव की सम्मति से स्वयं गुप्त रूप से उसकी हत्या के लिये बीजलदेव से आशीर्वाद प्राप्त करने के बहाने पाटण आता है। इस रहस्य का भेद खुलने पर अजयपाल उसके आवास पर अपने सिपाहियों से घेरा डलवाकर स्वयं उसे बंदी बनाने की सोचता है, किन्तु इसी समय अपनी पुत्री और दामाद के कल्याण का आकांक्षी उसका अंग-रक्षक बीजल देव उसकी हत्या कर देता है। उपर्युक्त कथा के साथ गणिका माणमती एवं साधुराम तथा शोभन एवं चांपादे की प्रासंगिक कथाएं भी विद्यमान हैं।

ऐतिहासिकता :

" राजहत्या " की प्रायः सभी घटनाएं जैन मुनि मेरुतुंग के " प्रबंध चिन्तामणि " एवं अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों पर आधारित हैं।[1] लेखक

1 (क) डा० आर० के० धारेया, गुजरातनो इतिहास, पृ० १४६
(ख) श्री के० एम० मुन्शी, ग्लोरी दैट वाज गुर्जर देश, भाग-२, पृ० २५६
(ग) गुजरात विद्यासभा, गुजरातनो इतिहास, पृ० १७२

ने केवल बीजल देव (बयजल्ल देव) द्वारा अजयपाल की हत्या के कारण में अपनी कल्पना का प्रयोग किया है। इतिहास-ग्रन्थों में यह प्राप्त नहीं है। अतः उसने बीजलदेव की कन्या देमती की सृष्टिकर प्रतापमल्ल और देमती की प्रासंगिक कथा का आयोजन किया है, जिससे अपनी कन्या के सुख सौभाग्य के हेतु बीजल द्वारा अजयपाल की हत्या का सुसंगत कारण प्रस्तुत किया जा सके। इसके साथ ही गणिका माणमती और साधुराम की तथा शोभन और चांपादे की प्रासंगिक कथाएं भी विद्यमान हैं।

उपरिनिर्दिष्ट प्रासंगिक कथाओं के पात्रों में से केवल देमती, माणमती और साधुराम कल्पना प्रसूत हैं। शेष पात्र इतिहास सम्मत हैं।

प्रस्तुत उपन्यास के आधार पर तत्कालीन परिस्थितियां निम्नांकित रूप में दृष्टिगत होती है। अजयपाल के समय आबू के धारा वर्ष देव, पालनपुर के प्रह्लादन देव एवं नडूल के केल्हण देव उसके सामन्त थे। पाटण की विशाल सैन्य-शक्ति का उन पर बड़ा भारी प्रभाव था।

कुमार पाल के जैन धर्म स्वीकार करने पर जैन धर्म को राज्याश्रय प्राप्त हो गया था और राज्य का शासन-सूत्र भी जैन धर्मानुयायी मंत्रियों के हाथ में आ गया था। शैव धर्म को कोई राज्याश्रय प्राप्त न था। कुमारपाल की मृत्यु पर शैवधर्मी अजयपाल के सिंहासनारूढ होने पर एवं जैन संस्थानों के प्रति अभद्र व्यवहार से जैन धर्मानुयायियों में काफी विक्षोभ उत्पन्न हो जाता है। इस विक्षोभपूर्ण वातावरण में जैन मंत्री, विद्वान्, एवं उनके अनुयायियों के साथ अजयपाल के अशान्त व्यवहार से प्रजा में भी उसके विरुद्ध विद्रोह की भावना उत्पन्न हो जाती है, जो उसकी हत्या का निमित्त बनती है। उपर्युक्त परिस्थितियां

इतिहास ग्रन्थों में इसी रूप में मिलती हैं । [1]

इस प्रकार घटना, पात्र, और वातावरण के इतिहासानुमोदित होने से " राजहत्या " को विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की कोटि में रखा जा सकता है । देपती और प्रतापमल्ल, माणपती, और साधुराम तथा शोभन और चंपादे की प्रासंगिक कथाएं कल्पना-प्रसूत हैं एवं चारित्रिक विकास तथा तद्युगीन शैव धर्म की दासी प्रथा एवं प्रकृति विरुद्ध जैन धर्म के स्वीकार से नैतिक पतन, एवं उनकी सारहीन रूढिवादिता का निरूपण करती हैं । अपने इस रूप में ये इतिहास से असंपृक्त नहीं हैं ।

साहित्यिक विवेचन :

कथावस्तु :

प्रस्तुत उपन्यास के संघर्ष पूर्ण कथावस्तु को रोचक बनाने के लिए लेखक ने आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं की घटनाओं को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि अपने घात-प्रतिघात से वे एक दूसरी का निमित्त बनती हुई पाठक के मन में कुतूहल और जिज्ञासा उत्पन्न करती जाय । उपन्यास के आरंभ में बीजल देव, देपती और मल्लदेव (प्रताप मल्ल) के कथोपकथन में कुमार पाल की मृत्यु के समाचार से मल्लदेव को चकित दिखा लेखक पाठकों के मन में उसके व्यक्तित्व के प्रति कुतूहल उत्पन्न कर देता है । झींझुवाड़ा के किले में किलेदार साहसमल और माणपती प्रसंग पर माणपती के स्वत्व की रक्षार्थ मल्लदेव के वीरतापूर्ण

१ (क) डा० धारैया प्रभृति, गुजरातनो इतिहास, पृ० १४५
(ख) गुजरात विद्यासभा, गुजरातनो इतिहास, १७२

विचारों की अभिव्यक्ति मल्लदेव के प्रति देमती के आकर्षण के साथ पाठकों में भी कुतूहल की वृद्धि करती है। गुप्तवेश में प्रताप मल्ल का पाटण में आवास, भाणमती का आतिथ्य, भाणमती का न्यायार्थ साहसमल के विरुद्ध महामंत्री से निवेदन उत्तरोत्तर कुतूहलवर्धक एवं रोचक हैं। आधिकारिक कथा की प्रमुख घटनाएं तो अपने आप में विस्फोटक एवं उत्तेजक हैं ही, उनका पाठक के मानस को आन्दोलित कर देना सर्वथा सहज है। कपर्दी, पंडित रामचन्द्र एवं आंबड़ मेहता की मृत्यु और पाटण के अवश आंतरिक विक्षोभ की प्रताप मल्ल में प्रतिक्रिया भी कम उत्तेजक नहीं है। इसी समय लीला देवी के साथ देमती का मालोर पहुंचना, दोनों की प्रणयानुभूति एवं उनका गांधर्वविवाह कथा में पुनः रोचकता की सृष्टि करते हैं। राजहत्या के पश्चात् एक समय के वियुक्त पति-पत्नी साधुराम और भाणमती का भावी सुखी जीवन की आशा के साथ पाटण से मालोर प्रयाण, तथा काशी में अपने पिता भीमसिंह से मिलने तक की बीजल की यात्रा पाठक के मन में कौतूहल को बनाये रखने में सर्वथा सफल है।

" राजहत्या " की आधिकारिक एवं प्रासंगिक कथाओं की घटनाओं का संघटन एवं सम्गुम्फन भी सम्यक् रूप में आयोजित किया गया है। संक्षिप्त कथावस्तु में निर्दिष्ट किये अनुसार उपन्यास की सभी घटनाएं सुसंबद्ध एवं सुसम्बद्ध रूप में विद्यमान है। प्रताप मल्ल देमती की कथा बीजलदेव द्वारा अजयपाल की हत्या के कारण की स्पष्टता प्रस्तुत करने, भाणमती - साधुराम की कथा प्रकृति विरुद्ध धार्मिक बंधनों की असारता का निरूपण करने, एवं शोभन-चंपादे की कथा जीवन की सफलता के लिये धार्मिक रूढ़िवादिता से मुक्त हो व्यावहारिक बनने की आवश्यकता की ओर इंगित करने के लिये ग्रहण की गई है। इस प्रकार उपर्युक्त प्रासंगिक कथाएं अपने उद्देश्यानुरूप आधिकारिक कथा के साथ सुघटित एवं सुसंबद्ध हैं।

कथावस्तु की घटनाओं का निरूपण स्वाभाविक रूप में दृष्टि-गोचर होता है। पात्रों की प्रकृति एवं परिस्थितियों के परिवेश में उनका चित्रण सहज संभाव्य प्रतीत होता है। महामंत्री कपर्दी एवं पंडित रामचन्द्र की जघन्य हत्याओं के मूल में अजय पाल की क्रूर प्रकृति एवं विरोधी वातावरण में उठते विद्रोह को दमन करने की प्रबल वृत्ति ही मूल कारण रही है। आबंड मेहता का प्रतिक्रियात्मक आंतर विग्रह, प्रतापमल्ल का अंतर्द्वन्द्व, प्रताप-देमती के विवाह के बाद प्रतापमल्ल को बंदी बनाने जानेवाले घातकी अजयपाल की आशंकित भीषण अनिष्ट से विचलित बीजलदेव द्वारा हत्या, बाहरी सैनिक सहायता से अजयपाल द्वारा पाटण की सत्ता हस्तगत करने पर आन्तरिक क्षोभ, फलस्वरूप जैन-मंत्रियों द्वारा पद-त्याग, राजा द्वारा जैन-मंदिरों का ध्वंस तथा महामंत्री कपर्दी और पं० रामचन्द्र की हत्याओं से क्षुब्ध प्रजा की उग्रता आदि घटनाएं भी उक्त विशेषता से संयुक्त हैं।

चरित्र-चित्रण :

जैसा कि कथावस्तु के विवेचन से प्रकट है कि प्रस्तुत उपन्यास गुजरात के बारहवीं शती के राजकीय वर्ग की प्रवृत्तियों एवं गति-विधियों को उपस्थित करता है। प्रतापमल्ल, अजयपाल, रानी नायिकी देवी, देमती, सोमेश्वर, आबंड, मेहता आदि इसके मुख्य पात्र हैं जिनके चित्रण के माध्यम से लेखक औपन्यासिक शिल्प के साथ उस युग को प्रस्तुत कर देता है।

प्रतापमल्ल पराक्रमी एवं महत्वाकांक्षी व्यक्तित्व से सम्पन्न भालोर का राजकुमार है, जिसकी मातृभक्ति राजनैतिक अभियानों में बाधक बनती है। वह जैन धर्मावलम्बी एवं सच्चरित्र है। उसकी चारित्रिक निष्ठा और मानवता एवं गणिका को भी बहन के रूप में ग्रहण करने के लिए उसे प्रेरित करती है। वीरोचित वृत्ति के कारण ही वह देमती के तदनुरूप विचारों से संतुष्ट होकर उसे जीवन-सहचरी

के रूप में स्वीकार कर लेता है। प्रजा-वत्सलता से प्रेरित होकर वह अजयपाल की हत्या को तैयार होता है, यद्यपि संयोगवश उसकी हत्या अन्य पात्र बीजलदेव द्वारा होती है। अजयपाल का चित्रण भी इसी प्रकार एक महत्वाकांक्षी राजा के रूप में हुआ है। यह शैव धर्मानुयायी है। महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर वह पाटण की सत्ता को हस्तगत करता है तथा उसकी विकृति ही उसे इतना अविवेकी बना देती है कि वह पंडित रामचन्द्र और आंबड मेहता की हत्याएं तक करवा देता है। वह साम्प्रदायिक आग्रह से संयुक्त व्यक्ति के रूप में दिखाई देता है। शैवों की प्रसन्नता के लिए महारुद्र का अनुष्ठान तथा जैन संस्थानों को तुड़वाना उक्त आग्रह के साथ साथ सांप्रदायिक असहिष्णुता के द्योतक हैं। देपली कुशल, विवेकसम्पन्न एवं वीरहृदया नायिका के रूप में चित्रित हैं। इसी प्रकार रानी नायिकी देवी न्यायप्रिय, प्रजावत्सल एवं विवेकी क्षत्राणी के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। पाटण के क्षुब्ध जन-समुदाय को समझा कर शान्त करने में उसकी कार्यदक्षता एवं योग्यता प्रभावित होती है। अमात्य सोमेश्वर एवं आंबड सेठ चाटुकार एवं दुर्बल स्वभाव के मंत्री के रूप में अंकित हैं। आंबड मेहता के चरित्र का एक दूसरा पक्ष भी है जो स्वाभिमानी, दूरदर्शी एवं क्रूर विचारों के राजकीय वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। भीमदेव और बीजलदेव आदि गौण पात्र हैं जो समकालीन राजपुरुषों के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं।

" राजहत्या " उपन्यास में लेखक की चरित्र-चित्रण की पद्धति सीधी-सादी है। अधिकांशतः पात्रों के चरित्र की ~~विशेषताएँ~~ विशेषताओं का उल्लेख वह स्वयं करता जाता है जिनमें वह बाहरी व्यक्तित्व के निरूपण के साथ स्वभावगत विशेषता का उल्लेख एवं आवश्यकतानुसार विश्लेषण स्वयं करता जाता है। लीलादेवी का चित्रण इसका उत्तम उदाहरण है। बीजलदेव, आंबड मेहता,

सोमेश्वर तथा अभयपाल आदि के चित्रण इसी वर्णनात्मक पद्धति के हैं। कहीं-कहीं पर व्यक्तित्व के रेखांकन अत्यन्त प्रभावपूर्ण हैं। उदाहरणार्थ झींझुवाडा में प्रतापमल्ल की बाह्याकृति एवं मानसिक स्थिति का चित्रांकन यहां उल्लेखनीय है -

> " सौन्दर्य से दीप्त गणिका के मुख पर छायी हुई दीनता की रेखाएं और दूसरी ओर देमती के मुख पर वीरतायुक्त रोष की रेखाएं उसकी नजर के सामने बार-बार आया करती थीं। उस गणिका को छुडाने और देमती की प्रसन्न मुद्रा देखने के लिए उसके अंतर में आतुरता थी।" [1]

वर्णनात्मक पद्धति के अतिरिक्त नाट्यात्मक पद्धति द्वारा भी पात्रों का चरित्र-चित्रण हुआ है। पात्रों के पारस्परिक कथोपकथन एक दूसरे के तथा साथ ही स्वयं उनके चरित्र को स्पष्ट करने में सहायक हुए हैं। संघ के स्त्री-पुरुषों के साथ मुनिजी का, देमती और बीजल, अभयपाल और कपर्दी, पंडित रामचन्द्र और श्रावकों आदि के संवाद उपर्युक्त विशेषता को लिए हुए हैं।

कथोपकथन :

" राजहत्या " उपन्यास के कथोपकथन पात्रानुरूप होने के साथ-साथ परिस्थिति के अनुसार इनका रूप बदलता रहता है। उपन्यास के अनुशीलन द्वारा इस निर्णय पर सरलता से पहुंचा जा सकता है कि कथा की गतिशीलता और पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के उद्घाटन में ये पर्याप्त सहायक हुए हैं। तीसरे इनमें सजीवता और रोचकता का भी गुण है। उपन्यास के आरम्भ में बीजलदेव

1 श्री कुंजीलाल व० शाह, राजहत्या, पृ० १५

और प्रतापमल्ल का संक्षिप्त कथोपकथन कुमारपाल के निधन के समाचार पर पाठक को पाटण की घटनाओं के प्रति ~~कि~~ जिज्ञासाशील बनाता है। इसी प्रकार साहसमल्ल और अजयपाल, सोमेश्वर और अजयपाल, श्रावक समाज और रामचन्द्र, गणिका माणकी के मृत्यु और आभड़ सेठ के कथोपकथन कथा को सम्यक् गति देते एवं भावी घटनाओं के नियामक तक बन पाते हैं। श्रावक-समाज के साथ पंडित रामचन्द्र का वार्तालाप इस विशेषता से युक्त है।

उपर्युक्त विशेषता के अतिरिक्त पात्रों की चारित्रिक विशेषता के उद्घाटन में भी ये उपयोगी दृष्टिगोचर होते हैं जिसे चरित्र-चित्रण के विवेचन के अंतर्गत भी निर्दिष्ट किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त देवती और लीलादेवी, सोमन और प्रतापमल्ल, देवती और प्रतापमल्ल के कथोपकथन भी इसी सरणि के हैं। इनमें विनोद और प्रणय की भावपूर्ण अभिव्यक्ति दो संवादों में मिलती है। संवादों की तीसरी विशेषता पात्रों के मनोरम मनोविश्लेषण को प्रस्तुत करने की भी है। अंतिम भाग में " रति और मति " प्रकरण में रति और देवती के कथनोपकथन द्वारा इसे प्रस्तुत किया गया है।

वातावरण :

समकालीन परिस्थिति को प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करने तथा उसकी पृष्ठभूमि के धरातल पर घटनाओं और पात्रों को प्रस्तुत करने के लिए उपन्यास के अंतर्गत वातावरण की सृष्टि की जाती है। कुमारपाल की मृत्यु के पश्चात् अजयपाल द्वारा पाटण के हस्तगत कर लेने पर वहाँ की जैन-प्रजा का आन्तरिक क्षोभ और ' आंतोष लेखक द्वारा यथार्थ रूप में अंकित हुआ है। इसे उसने जैन-मंत्रिमंडल के त्यागपत्र तथा प्रतापमल्ल और आंबड़ मेहता तथा आगे चलकर लीलादेवी के संवादों द्वारा प्रस्तुत किया है। आंबड़ मेहता के बलिदान

पर यह वातावरण चरम विकास को प्राप्त करता है। इसी प्रकार राज्यारोहण के समय अजयपाल के प्रति जैन-प्रजा की आशंका का वातावरण उनके प्रति राजा के प्रति अभद्र व्यवहार से अधिक प्रभावशाली बन जाता है। पाटण की जनता का क्षोभ पं० रामचन्द्र के व्याख्यान और तदनन्तर उसकी हत्या पर भयंकर विप्लवोद्घोष का रूप ले लेता है जिसका कि पर्यवसान अजयपाल के पलायन में होता है।

उपर्युक्त क्षोभ के साथ-साथ आंबड मेहता के अभिवादन के प्रसंग पर आन्तरिक विग्रह की परिस्थितियां विकसित होती हैं। यहां रक्तपात और नर-संहार का वातावरण घटनाओं के घात-प्रतिघात द्वारा प्रस्तुत हुआ है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि श्री चुनीलाल वर्धमान शाह ने आवश्यकतानुसार वातावरण की सृष्टि द्वारा उपन्यास के कथानक को सरस और प्रभावशाली बनाने के साथ-साथ पात्रों के चारित्रिक विकास को भी हृदयंगम कराया है।

भाषा-शैली :

लेखक की भाषा की सजीवता और रोचकता का परिचय हम इनके " कर्मयोगी राजेश्वर " में देख आये हैं। प्रस्तुत उपन्यास में भी लेखक अपने उसी भाषा सौष्ठव और सामर्थ्य के साथ दृष्टिगत होता है। लेखक ने " राजहत्या " में भी इतिवृत्तात्मक और नाट्यात्मक शैलियों का सुष्ठु समन्वय प्रस्तुत किया है।

उपन्यास के आरम्भ में मूलीभुजाड़ा के किले की सैनिक महत्ता के वर्णन के साथ अजयपाल के सत्तारोहण के साथ किये परिवर्तन और प्रताप पर पड़े उसके प्रभाव का, तथा पाटण में शाकम्भरी के सैनिकों द्वारा पाटण के सैनिकों को हटा अपने सैनिकों की नियुक्ति कारण उत्पन्न हुए पाटण की प्रजा के विक्षोभ का, तथा जैन विहारों के विध्वंस और कवीन्द्र पण्डित रामचन्द्र के हनन पर

पाटण की जनता के विद्रोह का लेखक ने जीवन्त वर्णन प्रस्तुत किया है। आंबड मेहता के राजमहल बुलाये जाने पर उसके साथ पाटण के श्रावक समाज का समस्त युवक मण्डल उमड पडता है -

> " श्रावक समुदाय के शिरोमणि, उदय मेहता के वीर पुत्र राजपितामह के जिगरदारी आम्बड मेहता के ऊपर की यह आपत्ति सबको अपने ऊपर की ही एक अपेक्षित आपत्ति जैसी लगी और कितने ही युवक बोल उठे - " ठहरो मेहतानी, ठहरो, हम भी आपके साथ आते हैं। " - - - - इस प्रकार पांच सौ मनुष्यों के समूह के साथ निकला आम्बड राजमहल तक पहुंचते पहुंचते दो हजार मनुष्यों के आगे चला जा रहा था। " [1]

इसी प्रकार लेखक, मलयायी के मंदिर, सिद्धपुर के मेले का वर्णन तथा प्रत्येक घटना-प्रसंग को जीवन्त रूपरेखा में पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करने में सफल रहा है।

लेखक की भाषा-शैली की सरलता और मनोरमता उपन्यास में प्रस्तुत कथोपकथन में भी सर्वत्र अवलोकनीय है। ये कथोपकथन कथावस्तु, चरित्र-चित्रण एवं विविध विषयों से सम्बद्ध हैं। इनसे उपन्यास में पर्याप्त रोचकता की सृष्टि हुई है।

उपर्युक्त इतिवृत्तात्मक एवं नाट्यात्मक शैली के सम्यक् प्रयोग के उपरान्त उपन्यास के अन्त में " पति और रति " के संवाद द्वारा देमती के जीवन में रतिभाव के उद्भव और अपरिचय के कारण उसका विश्लेषण प्रस्तुत कर मानव

---

1 श्री चुनीलाल वर्धमान शाह, राजहत्या, पृ० २६२

०४ मन के रहस्यों का भी लेखक ने सम्यक् उद्घाटन किया है। अनजाने और अनायास ही परस्पर आकर्षित कर नर-नारी को मुग्ध रखनेवाला भावरति है, जिसकी प्रथम अनुभूति मुख की रक्तिमा में व्यक्त लज्जा द्वारा होती है " प्रताप मनो-ग्रन्थि " में लेखक इसी प्रकार देमती और प्रतापमल्ल के मानसिक रहस्यों का उद्घाटन कर अपनी विश्लेषणात्मक शैली का परिचय प्रस्तुत करता है।

संक्षेप में प्रस्तुत उपन्यास में लेखक की भाषा-शैली अपने परिष्कृत और परिमार्जित स्वरूप में दृष्टिगत होती है।

उद्देश्य और जीवन-दर्शन :

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक का उद्देश्य है, मध्यकालीन गुजरात के पाटण की प्रजा की स्वत्व-प्रियता और उसकी रक्षार्थ प्रजा के संघर्ष का निरूपण अन्यपाल द्वारा किये गये विध्वंस एवं नृशंस हत्याओं के विरोध में प्रजा के असंतोष एवं विद्रोह के निरूपण द्वारा लेखक अपने उद्देश्य में सफल कहा जा सकता है। दिव्यशक्ति: हत्या के पाप से बीजलदेव के संतप्त मानस द्वारा वह हिंसा का समर्थन न करके उसके अनौचित्य का ही प्रतिपादन करता है, यद्यपि घटनाओं की पृष्ठभूमि को देखते हुए वह पाठक की सहानुभूति का ही पात्र बनता है। इससे स्पष्टतया यही व्यंजित हुआ है कि हत्या के भय से कर्तव्य-विमुख होना- होना श्रेयस्कर नहीं है।

६ " रूपमती":

" रूपमती " सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की पृष्ठभूमि पर लिखा हुआ ऐतिहासिक उपन्यास है। इस समय दिल्ली के सिंहासन पर शेरशाह सूरी और हुमायु की सत्ताओं के आवागमन का चक्र प्रवर्तमान था। इन परिस्थितियों में शेरशाह द्वारा मालव का सूबेदार शुजाअतखान अपनी स्वतंत्रता घोषित कर मालव

में अपनी हुकूमत स्थापित करता है और स्वयं सुल्तान बन जाता है। उसके निधन पर बाज सा वीर एवं संगीत प्रेमी उसका पुत्र बाजिदखान उसका उत्तराधिकारी बनता है। संगीत-कला में निपुण रूपमती के साथ उसका प्रेम कतिपय काव्य, कहानियों एवं उपन्यास का विषय बन गया है। प्रस्तुत उपन्यास भी मांडव के बाज बहादुर और रूपमती की उसी प्रणय-गाथा को निरूपित करता है।

कथावस्तु :

" रूपमती " की संक्षिप्त कथावस्तु इस प्रकार है। सारंगपुर के गोसाईं यदुराय की बेटी रूपी (रूपमती) को कीर्तन के हेतु अपने अतिथि गोसाईं नंददास की कन्याओं - राधा और ललिता - को देवमूर्ति की वेशभूषा पहनाकर मंदिर को भ्रष्ट करने के दण्ड-स्वरूप तीन दिन के उपवास का मुखिया का आदेश होता है। शुजाअत्पुर से आया बाजिदखान यह जान द्रवित हो जाता है। उपवास की समाप्ति पर वह सहानुभूतिवश उसकी शारीरिक स्थिति देखने वहाँ पहुंचता है, किन्तु उसकी कृशता में अन्तर्निहित उसके सौन्दर्य से मुग्ध होकर लौटता है। रूपमती के संगीत का माधुर्य उसके प्रति बाज के आकर्षण में परिणत होता है। इससे पूर्व कि उसका आकर्षण रूपमती के लिये प्रेम का रूप ग्रहण करे, अपने विश्वस्त अनुचर सुलेमान के निवेदन पर बाज का पिता शुजाअत खान उसे शुजाअत्पुर ले जाकर अपने सेनानायक हाफिजखान की संगीतज्ञ पुत्री हमीदा बेगम से उसकी शादी कर देता है। इसके पश्चात् शुजाअत खान की मृत्यु हो जाती है। ताज के संघर्ष में सफल बाजिदखान सताज्ञ हो मांडव में रहने लगता है। इधर यौवना रूपमती बाज के लिये प्रणमातुर हो अपने भाई गोविंद द्वारा दो दोहों में अपना प्रणय-संदेश भेजती है, जिसे प्राप्त कर बाज उसे वहाँ बुला लेता है। वहाँ संगीत और प्रेम की सुरसरिता में दोनों मोदमग्न हो जाते हैं। रूपमती के प्रेम को देख कर बाज उससे निकाह के लिये प्रस्तुत होता है, किन्तु

विवाह-निकाह के बंधन बिना ही वह सर्वात्मभाव से बाज की हो चुकी थी, अतः निकाह के बाह्य बंधन के लिये वह अपनी असम्मति व्यक्त कर देती है एवं बिना निकाह आत्म-भाव से समर्पित होकर सामाजिक विशेष विरोध के उपरांत भी वह उसके यहाँ रहती है।

रूपमती के पिता को इससे बड़ा आघात लगता है और वह समाज से त्रस्त हो सारंगपुर छोड़कर अपने पुत्र, गोविंद और सुन्दर, के साथ मथुरा चला जाता है, जहाँ अपनी पुत्रियाँ, राधा और ललिता, के साथ मथुरावास करते हुए गोसाईं नन्ददास से उसकी भेंट होती है। यहाँ पिता के कठोर अनुशासन से पीड़ित राधा और ललिता के प्रति गोविन्द और सुन्दर के हृदय में सहानुभूति उत्पन्न होती है, किन्तु नंददास द्वारा " पुत्री-विक्रेता " के कथन से अपमानित यदुराम वहाँ से निकल मांडव में रूपमती के सम्मुख विषपान कर अपना प्राणान्त कर देता है और गोविन्द-सुन्दर मथुरा से सारंगपुर आकर सेना में भरती हो जाते हैं।

इतने में अदहम दरवान के नेतृत्व में दिल्ली के बादशाह अकबर की सेना का सारंगपुर पर आक्रमण होता है। बाज मांडव से अपने विश्वस्त अनुचर सुलेमान को अपने हरम सम्बन्धी गुप्त-संदेश दे उसका सामना करने के लिए निकलता है। इसी दौरान सैनिक वेश में गोविन्द-सुन्दर और नर्मदा-परिक्रमा-वासी के रूप में पिता नंददास से बिछुड़ी हुई राधा और ललिता मांडव में रूपमती के पास पुनः मिल जाते हैं एवं वहाँ से रूपमती तथा राधा-ललिता को बचाने के प्रयत्न में दोनों भाई मारे जाते हैं और रूपमती सिपाहियों द्वारा पकड़ी जाकर कैद कर ली जाती है। इधर बाज अपनी सेनाओं की पराजय देख पलायन कर जाता है। विजेता सेनानी अदहम खान सारंगपुर पतन के बाद बाज का पीछा करता हुआ मांडव आकर रूपमती को प्राप्त कर प्रसन्न होता है, किन्तु वह उसकी

अंतिम दावत के समय अपने अंतिम गान के साथ विषपान कर अपनी इहलीला समाप्त कर देती है। राधा और ललिता भी युद्ध में हुई मुसलमानों द्वारा नृशंस हत्या और लूट के समाचारों से विक्षुब्ध अकबर के वहाँ आ पहुँचने पर अदहमखान के सिपाहियों द्वारा कत्ल कर दी जाती हैं और उनकी शोध करता हुआ उनका पिता भी उन्हीं के शव के पास आकर अपने प्राण छोड़ता है। नारी व जाति का विद्वेषी, बाजू का विश्वस्त अनुचर सुलेमान बाज के पराभव के उपरान्त भी अकबर द्वारा सम्मान बड़े सम्मान के साथ सारंगपुर में रूपमती का अन्तिम संस्कार कर वहाँ उसका मजार बना कर वहीं रहने लगता है। अपनी उत्तरावस्था में बाज भी वहीं आकर अपने प्राण छोड़ता है।

ऐतिहासिकता :

ऐतिहासिक ग्रन्थों में यद्यपि रूपमती की सुख दुःख कथा प्राप्त नहीं होती, तथापि बाजबहादुर के समकालीन अहमद-इल-उमरी ने शुजाअत खान के विश्वस्त अनुचर सुलेमान से सुनकर उसे १५५५ ई० में फारसी में लिखा और १५५२ ई० में मीर जाफर अली ने स्वयं उसकी एक प्रतिलिपि तैयार की। श्री एल० एम० क्रम्प (L.M. CRUMP) ने विशेष रुचि और शोध के साथ The lady of the lotus Roopmati Queen of Mandu " शीर्षक पुस्तक में रूपमती के कतिपय चित्रों और गीतों के साथ उसकी कथा का अंग्रेजी रूपान्तर प्रकाशित किया है। मूल कथा के ऐतिहासिक मूल्य के विषय में लिखते हुए श्री क्रम्प CRUMP) ने लिखा है - " मूल प्रति की प्रामाणिकता या इसकी तिथि के सम्बन्ध में शंका का कोई कारण नहीं है। - - - - - लेखक जिन घटनाओं का उल्लेख करता है उनका समसामयिक है और अपनी सूचना का आधार बताता है। यह कोई सुलेमान खान था, जिसने घटनाओं को अपनी आँखों से देखा था और जो शेरशाह द्वारा मालवा के गवर्नर के (सूबेदार के) पद पर नियुक्त शुजाअत

खान के अनुचरों में से था। वह आजिदखान की अदालत में उसके हरम का अधिकारी था और बताया गया है कि वह रूपमती के अन्तिम गीत और बाज बहादुर के महल में अदहम खान द्वारा दी आखिरी दावत के समय उपस्थित था।[1]

श्री एल० एम० क्रम्प की उपर्युक्त पुस्तक के आधार पर श्री चूनीलाल वर्धमान शाह द्वारा लिखित रूपमती की कथावस्तु निम्नांकित अन्तर के अतिरिक्त सर्वथा ऐतिहासिक कही जा सकती है। मूलकथा में आजिद खान का यदुराय के घर किसी दावत के निमंत्रण पर मैत्रीभाव से जाना और रूपमती के सौन्दर्य के वशीभूत होना बताया गया है।[2] प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने इस घटना को औपन्यासिक कला की दृष्टि से तीन दिन के उपवास से पीड़ित रूपमती को देखने खान को यदुराय के यहाँ भिजवा कर उपर्युक्त तथ्य को और भी प्रतीति कर रूप में प्रस्तुत किया है। इससे ऐतिहासिक तथ्य में कोई विसंगति उत्पन्न नहीं होती।

" रूपमती " की पूर्व निर्दिष्ट अधिकारिक कथा के साथ गुसाईं नंददास एवं रूपमती के भाई गोविन्द- सुंदर और राधा-ललिता की काल्पनिक प्रासंगिक कथाएं भी यहाँ विद्यमान हैं।

प्रस्तुत उपन्यास की घटनाओं की भांति इसके अधिकांश पात्र भी पूर्व निर्दिष्ट श्री क्रम्प के ग्रन्थ के आधार पर ऐतिहासिक हैं। केवल प्रासंगिक

१ एल० एम० क्रम्प, दी लेडी आफ दी लोटस, पृ० २७
२ वही, पृ० २८

कथाओं के नंददास, उनकी पुत्रियां, राधा-लक्षिता, बलदेव, एवं आनन्दी कल्पना प्रसूत हैं। किन्तु ये मुख्य पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिये प्रस्तुत सहायक पात्र हैं एवं उनसे उपन्यास की ऐतिहासिकता यथा अप्रभावित रहती है।

प्रस्तुत उपन्यास के आधार पर तत्कालीन परिस्थितियां निम्नांकित रूप में थीं। राजनीतिक क्षेत्र सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का वातावरण सल्तनतों के उथल-पुथल का समय था। फरवरी १५५५ में हुमायुं ने दिल्ली आगरा में अपनी सल्तनत स्थापित की। (२७ जनवरी), १५५६ में उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर) सिंहासनारूढ हुआ। इसी समय उसे मोहम्मद शाह अदाली के प्रधान मंत्री हेमू से उसे युद्ध कर अपने राज्य की रक्षा करनी पडी। इसके शीघ्र पश्चात् उसने पंजाब, और राजपूताने से युद्ध-परंपरा कर दी।[1] उत्तर भारत की तुलना में शेर शाह द्वारा मालवा के सूबेदार के रूप में नियुक्त[2] एवं तदनन्तर परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ स्वयं सुल्तान बन जाने तक शुजाअत खान की मालवा की सल्तनत उसके शासन काल तक सुख शांति मय थी, किन्तु बाजिदखान के समय अकबर के मालवा पर आक्रमण करने पर वह समाप्त हो जाती है।

समाज पुरातन जातिगत भेदभाव का अनुसरण कर रहा था। धार्मिक रूढियां प्रबल थीं। वाद्य और कण्ठ्य संगीत लोगों के मनोरंजन के मुख्य साधन थे। संक्षेप में उपन्यास में प्रस्तुत वातावरण पूर्व निर्दिष्ट इतिहास ग्रंथों के आधार पर इतिहास सम्मत है।

१ डा० ईश्वरी प्रसाद, भारत का इतिहास, भाग दो, पृ० २०

२ श्री एल० एम० क्रम्प, दी लेडी आफ् द लोटस, (क्वीन रूपमती), पृ० ३८

इस प्रकार कथावस्तु, पात्र, और वातावरण की दृष्टि से रूपमती को विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की कोटि में रखा जा सकता है।

साहित्यिक विवेचन :

कथावस्तु :

प्रस्तुत उपन्यास में रोचकता और कुतूहल के निर्वाह में लेखक ने अपने कौशल का सम्यक् परिचय दिया है। रूपी के उपवास और बाज के तद्विषयक कुतूहल से बड़े आकर्षक रूप में उपन्यास की कथावस्तु का आरम्भ होता है। इसके बाद बाज और रूपमती का परस्पर आकर्षण, उनकी संगीत गोष्ठी में उसका अनुरक्ति में विकास तथा शुजाअत्खान द्वारा उसमें विक्षेप और उनका वियोग पाठकों को दोनों के प्रति जिज्ञासातुर बना देता है। शुजाअत्पुर में बाज की हमीदा के साथ शादी, एवं रूपमती का बलदेव के साथ वाग्दान इन दोनों घटनाओं से पाठकों में कुतूहल की और भी वृद्धि होती है। बलदेव की मृत्यु पर रूपमती का मन उसे अपने यौवन और प्रणयातुर हृदय की अनुभूति कराके उसे बाज के प्रति उन्मुख करता है। रूपमती के काव्यात्मक प्रणय-संदेश का सुलेमान और बेगम हमीदा के हाथों में पड़ना, और हमीदा का उसे अपनी निजी प्रणयाभिव्यक्ति के लिए उसका बाज के सम्मुख गा बैठना भी एक अद्भुत और रोचक प्रसंग बन जाता है। हमीदा से बाज के प्रश्नोत्तर से इसका रहस्योद्घाटन हो जाता है। और वह रूपमती एवं बाज के पुनर्मिलन में सहायक होता है। इसके अनन्तर बाज की मनस्थिति के समय फकीर की सांसारिक असारता सम्बन्धी उक्ति और रूपमती के पिता की आत्महत्या से पाठक के मन में पुनः रूपमती और बाज के भावी के सम्बन्ध में आशंका और जिज्ञासा उत्पन्न होती है जिनका

सारंगपुर पर अकबर की फौजों के आक्रमण, खान की पराजय और रूपमती के प्राणोत्सर्ग में शमन होता है। इस प्रकार उपन्यास में लेखक ने आद्योपान्त कुतूहल के सम्यक् निर्वाह द्वारा रोचकता की पर्याप्त पुष्टि की है।

रूपमती के कथावस्तु का संयोजन भी लेखक ने बड़ी कलात्मकता के साथ किया है। इसकी आधिकारिक कथा की पूर्व निर्दिष्ट घटनाएं बड़े आकर्षक और सुगठित रूप प्रस्तुत हैं। इसके साथ नंददास एवं गोविंद-सुन्दर तथा राधा और ललिता की प्रासंगिक कथाएं भी विद्यमान हैं। नंददास की कथा स्त्रीवादी वैष्णवों की धर्मांधता और अव्यावहारिकता का निरूपण करती है। इसके विपरीत गोविंद-सुंदर और राधा-ललिता की कथा इस कटु कठिनाइयों से उत्पन्न दयनीयता से मुक्ति पाने के लिये आत्मीय साहस की ओर इंगित करती हैं। उपन्यास में ये प्रासंगिक कथाएं आधिकारिक कथा के साथ आद्योपान्त सुसंबद्ध एवं सुगुम्फित हैं। रूपमती के कथावस्तु-गुम्फन के विषय में श्री सुंदरम् का कथन वस्तुतः मननीय है - रूपमती के कथानक एवं पात्रों की विचारणा के बाद आप लिखते हैं -

> " कथावस्तु का गुम्फन भी अच्छे कौशल प्रसंगों की वैविध्य पूर्ण सजावट एवं कथा के भावों को आवश्यकतानुसार हल्की और गहरी रंग छाया की पूर्ति करें, ऐसी घटनाओं की संयोजना से युक्त है। " [1]

उपन्यास में घटनाओं की संभाव्य रूप में प्रस्तुती के विषय में लेखक का कला-कौशल सर्वत्र क्रियाशील है। बाज और रूपमती के आकर्षण की

---

१ श्री सुंदरम्, गुजराती साहित्य सभा, १९५१-५२, पृ० ७२

साहसिकता के लिये लेखक ने घटनाओं को बड़े कौशल के साथ प्रस्तुत किया है। बंशीधरजी के मंदिर को भ्रष्ट करने के दण्ड स्वरूप रूपी को तीन दिन के उपवास का आदेश, उपवास के दिनों में पिता के पहरे में रूपमती का रात्री के समय गाय का रक्त-पान कर समय यापन, बाज का उपवास के तीसरे दिन रूपमती की अवस्था देखने पहुंचना, और रूपमती का दण्ड देनेवाले धर्मियों की अपेक्षा सहानुभूति रखनेवाले इस विधर्मी के प्रति आकर्षण, आदि स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत हुए हैं। हिन्दू कन्या रूपमती के प्रति बाज के आकर्षण और उसके साथ संगीत गोष्ठी में विकसित उसके अनुराग को लक्ष्य कर शुजाउल्लखान का बाज को शुजाउल्पुर ले जाकर संगीतज्ञ हमीदा के साथ उसकी निकाह, तथा यदुराय द्वारा रूपमती का बलदेव के साथ कन्यादान दोनों पिताओं के, अपनी संतान के प्रति, सहजिक कर्तव्य के रूप में चित्रित हैं। शुजाउल्लखान की मृत्यु के बाद अपने श्वसुर हाफिजखान के सरस्वत हथियाने के विचार और तदनुसार अपने बड़े भाई दौलतखान की उसके द्वारा हत्या देखकर घातकी श्वसुर को मार बाज का स्वयं सुल्तान बनना सहज स्वाभाविक है और इसी प्रकार रूपी को मजूर पर चढ़ने का अपने साहस से मुग्ध करने के प्रयत्न में बलदेव की मृत्यु भी।

इधर रोज की चोली को पहनते समय उसके भरने से विभिन्न अर्थों रूपी में ~~यौवनभर~~, यौवनागम, और बलदेव की मृत्यु के मूल में निहित कारण पर उसका मन रूपमती को बाज के लिये हृदय में विद्यमान प्रणय के प्रति सहजरूप से उद्बुद्ध कर देते हैं और वह गोविंद के हाथों बाज को अपना प्रणय-संदेश भेजने को उद्यत हो जाती है। इस प्रकार लेखक ने बाज और रूपमती के वियुक्त हृदयों के पुनर्मिलन को अद्भुत साहसिक रूप में प्रस्तुत किया है। बाज रूपमती के प्रेम और अपनी स्थिति की नैतिक उपयुक्तता के लिये उससे निकाह के लिए प्रस्तुत होता है, किन्तु रूपमती का अपनी सहेली के विवाहित जीवन में प्रणयातुरता के

अब्दान के अनुभव और उसके आत्म-समर्पण के आधार पर निजी प्रणय की रक्षा के लिये उसका निकाह से अस्वीकार कर देना प्रेमी की मनोवैज्ञानिकता के सर्वथा अनुकूल है व इसके मासूकी में रहने वाले खान का उसे वापस भेजना तथा काजी द्वारा उसे उपमती के इसके हकीकी को समझाने पर उसे वापस बुला लेना और बिना निकाह उसके प्रेमपूर्ण संगीत के साथ जीवन यापन करना मनोवैज्ञानिक धरातल पर सर्वथा स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत हुआ है। उपन्यास के अंत में रूपी का प्रेम की वेदी पर आत्मोत्सर्ग, और खान का अकबर की मनसबी स्वीकार कर जीवित रहना उनके प्रेम की कोटि के ही अनुरूप है। इस प्रकार उपन्यास में घटनाओं की प्रस्तुती न केवल संभाव्यता पूर्ण है, अपितु उनके साथ मनोवैज्ञानिकता का कुशल प्रयोग उनकी रोचकता में भी अभिवृद्धि करता है।

संक्षेप में उपमती का कथावस्तु, घटना-संयोजन, कौतूहल के निर्वाह एवं घटनाओं के निरूपण में उनकी मनोवैज्ञानिक संभाव्यता के साथ रोचक प्रस्तुती से अपने कलात्मक उत्कर्ष का अभिव्यंजक है।

पात्र और चरित्र-चित्रण :

खान बहादुर और उपमती प्रस्तुत उपन्यास के मुख्य पात्र हैं। उपमती के माता-पिता, गोपी और मदुराय, तथा उसके भाई गोविन्द और सुन्दर तथा गुसाईं नन्ददास और उनकी पुत्रियां राधा-लक्षिता और सुलेमान आदि सहायक पात्र हैं, जो कथावस्तु में आवश्यकतानुसार उपस्थित होते हैं। इनके अतिरिक्त शुजाअतखान, हाफिजखान, महमदखान कुलजान बेगम, हमीदा बेगम, अदहमखान, मालखान अकबर, बलदेव तथा आनन्दी इसके गौण पात्र हैं।

युद्ध में खान की तरह त्वरित गति से कार्य करने वाला खान

बहादुर असाधारण रूप से संगीत और सौन्दर्य प्रेमी है। सारंग पुर में उसके यहाँ की संगीत-गोष्ठी में गीत के साथ रूपमती की आह्लादकता उसे रूपमती के प्रति आकर्षित करती है और उसका हृदय रूपमती के प्रेम और सौन्दर्य से अभिभूत हो उठता है। रूपमती का संगीत उसे काव्य की अभिरुचि से भी सम्पन्न करता है। उसका कोमल हृदय शिकार के समय व्यंग-व्याध द्वारा हिरणी के हनन पर रूपमती के काव्य के साथ द्रवीभूत हो जाता है। शीघ्र ही उसकी करुणा निरीह पशु-पक्षियों के शिकार की मनाई के आदेश में दृष्टिगोचर होती है। उसका संगीत-प्रेम उसके शासन को भी प्रभावित करता है। इसी हेतु अकबर के आक्रमण के समय उसके द्वारा सेना का अकुशल नेतृत्व उसकी पराजय का कारण बनता है और पराजय के अन्त में भौतिक उपलब्धियों का आकांक्षी अकबर का मनसब बन कर जीवन यापन करता है।

रूपमती की बाल्यावस्था से ही कण्ठ्य और वाद्य संगीत में निपुणता उसे बंशीधरजी के मंदिर में तथाकथित अपराध और तदनन्तर बाज के आकर्षण और कालान्तर में उसे उसके अनुराग का पात्र बना देती है। बाज के वियोग में और बलदेव के साथ उसके वाग्दान पर बलदेव का उसे मोहित करने के प्रयत्न में छत्तर से गिर कर मर जाना, उसे अपने सौन्दर्य और यौवन के प्रति प्रबुद्ध कर देता है। पूर्वकाल की मुग्धा रूपमती अब शत यौवना और बाज के लिए प्रणयातुर हो उठती है। उसकी संगीत और काव्य-प्रतिभा उसे बाज-प्रणय के लक्ष्य की सिद्धि में सहायक होती है। बाज को उसका निकाह के लिए निषेध उसके अपार्थिव और अलौकिक प्रेम, का द्योतक है। उसके कवि-हृदय का परिचय उसके पदों में एवं शिकारी के तीर से हरिणी के आहत होने पर प्रस्फुटित करुण-काव्य में व्यक्त होता है। बाज के प्रति उसके प्रणय और समर्पण शीलता की पराकाष्ठा देख कर नारीजाति का दुबेड़ता सुलेमान भी उसके चरणों में सिर रख

देता है, प्रणय की वेदी पर उसके आत्मोत्सर्ग से प्रताडित होकर अदहमखान मांडव छोडकर भाग जाता है और स्वयं अकबर उसके शव के सम्मुख नत मस्तक हो उसके प्रति श्रद्धांजलि व्यक्त करता है।

नारी जाति से घृणा करने वाले सुलेमान खान का अनन्य विश्वास पात्र अनुचर है। खान के हरम एवं संगीतकारों के वृन्द का वह अधिकारी है। युद्ध में जाने से पूर्व उसे ही खान अपने अंतरंग आदेश देकर जाता है, और तदनुसार बेगमों की हत्या के जघन्य कार्य को करने में भी उसे कोई संकोच नहीं होता।

गोसाईं नन्ददास धर्मांध, रूढ़िवादी, असहिष्णु और दुराग्रही वैष्णव है। अपनी पत्नी के निधन पर वह कृष्ण भक्ति की ओर आकृष्ट होता है एवं वह अपनी लडकियों को भी मीरां की भांति कृष्णमय बनाना चाहता है। इसी लिये मथुरा आ रहता है। लडकियों को सांसारिकता के प्रभाव से बचाने के हेतु उन पर उसका अनुशासन अव्यावहारिक एवं असह्य हो जाता है। उसके इस असहिष्णु व्यवहार से त्रस्त कन्यायें उसे छोड पलायन कर जाती हैं।

मदुराय की सरलता, सहिष्णुता और लोकमीरसता, नंददास की तुलना में स्पष्ट उभर आती है। वह रूपमती के खान की संगीत गोष्ठी में उपस्थित होने के सम्बन्ध में सहिष्णु है, किन्तु रूपमती द्वारा खान के मांडूमहल को ही अपना आवास बना लेने पर, उसकी लोक मीरसता उसे घर, गांव छोड अन्त में आत्महत्या के लिये बाध्य करती है। उसकी तुलना में उसके पुत्र स्वाभिमानी वीर एवं निर्भीक हैं। मथुरा से पिता के पलायन पर वे गांव में आ सैनिक बन जाते हैं। अकबर की फौजों के आक्रमण के समय रूपमती, और राधा-ललिता को बचाने के लिये अकबर के सिपाहियों से लडते हुए वीरगति प्राप्त कर जाते हैं।

मुनाजत खान, वाजिद खान और अकबर मुस्लिम शासक हैं, एवं हाफिजखान, अदहम खान तथा माल खान सेनापति वर्ग के हैं ।

इतर पात्र :

मुग्ध बलदेव का अस्तित्व रूपमती के सौंदर्य पर उत्सर्ग हो उसे उसके प्रस्फुटित यौवन का बोध कराने के हेतु है । आनंदी स्वानुभव के आधार पर वैवाहिक बन्धन से प्रणयातुरता की क्षीणता की विज्ञप्ति कर चली जाती है । रूपमती के इश्केहकीकी का अवस्था का ज्ञान को बोध कराने के लिए " काजी " का पात्र कथ अस्तित्व में आया है, जो स्वयं रूपमती से प्रभावित हो उसके गीत गाने लगता है ।

पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिये लेखक ने आवश्यकतानुसार वर्णनात्मक, नाट्यात्मक, एवं विश्लेषणात्मक आदि ई प्रणालियों को उपयोग किया है । पात्रों के शब्द-चित्र, विभिन्न अवस्थाओं में उनके आकृति वर्णन तथा उनका प्रभावात्मक चित्रण वर्णन-प्रधान शैली में दृष्टिगत होता है । तीन दिन के उपवासोंपरांत खान द्वारा रूपमती के प्रथम दर्शन का चित्रण अवलोकनीय है - " वाजिदखान रूपमती को देखकर स्तब्ध रह गया । उसका गौरवर्ण, बदाम के आकार की तेजस्वी आँखें, तिलपुष्प सी नासिका, पतली और सुघड देहलता, और इन सब से विशेष तीन दिन के उपवास के बाद भी उसके मुख पर प्रकट मनोरम रक्तिमा, यह सौन्दर्य, ये भावपूर्ण नम्र नयन, यह विनयमुक्त लज्जाशीलता, यह लावण्यपूर्ण मुखमंडल, वाजिदखान को असाधारण लगे । " लेखक ने यहाँ रूपमती के अद्भुत सौन्दर्य के चित्रण के साथ रूप लावण्य की अनन्त निधि पर खान की विस्मय-विमुग्धता भी व्यंजित कर दी है । इसी प्रकार रूपमती द्वारा खान के अवलोकन पर उसमें उसके प्रस्फुटित यौवन के साथ उसमें हार्दिकता और दिव्यता

की अभिव्यक्ति की गई है। अधिकांशतः लेखक ने वर्णनात्मक पद्धति का अनुसरण किया है।

इसके अतिरिक्त पात्रों के कथोपकथन द्वारा सम्बद्ध पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन किया गया है। उपन्यास में के आरंभ में रूपी और राधा-लक्ष्मी के वार्तालाप द्वारा रूपी के अहिर्मुखी और राधा-लक्ष्मी के अन्तर्मुखी होने का परिचय मिलता है, तो शुजाअतखान के निधन पर हाफिजखान और बाजिदखान तथा बाजिदखान और सुलेमान के संवाद हाफिजखान के राज्य-लोभी और बाजिदखान के भ्रातृप्रेमी, सम्यक्षक और युद्ध में आन से बहादुर होने का। निकाह के लिये इन्कार करने और आन द्वारा रूपमती के विदा किये जाने पर काजी और आन का अंतरंग कथोपकथन रूपमती के इसके हकीकी, अर्थात् अपार्थिक और अलौकिक प्रेम की पराकाष्ठा की अभिव्यक्ति करता है। शिकारी द्वारा हिरणी के हनन पर आन और रूपमती का संक्षिप्त संवाद दोनों के करुणा-निर्झर से हृदयों की प्रतीति कराता है। पराजित आन के मांडव महल की स्त्रियों के हनन के लिये आदेश मिलने पर सुलेमान और सुल्तान बेगम का कथोपकथन सुल्तान की औरत-प्रियता और सुलेमान की विश्वासपात्रता व्यक्त करता है। अकबर के मालव आक्रमण पर अदहमखान और मालखान का वार्तालाप एक ओर अदहमखान के स्त्री लोलुप होने तथा मालखान के विद्रोही चाटुकार होने का परिचय देता है और वहां परोक्षतः रूपमती की चारित्रिक अलौकिकता भी ध्वनित हो जाती है। इस प्रकार उपन्यास में प्रस्तुत कतिपय कथोपकथनों द्वारा सम्बद्ध पात्रों की विविध चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन किया गया है।

चरित्र-चित्रण में नाट्यात्मक शैली के प्रयोग के साथ ही लेखक ने कथोपकथन आन के सम्मुख रूपी का संगीत-माधुरी प्रस्तुत करने और दोनों के

परस्पर आकर्षण की ओर कथावस्तु को ले जाता है। शुजाउल्लाम की मृत्यु पर हाफिजखान के ताज के लिए षड्यंत्र के सम्बन्ध में सुलेमान और बाजिदखान का कथोपकथन बाज को सुल्तान पद ग्रहण करने के लिए कटिबद्ध कर देता है। मांडव में शिकार से लौटने पर हमीदा का बाज के समक्ष रूपमती के दोहों का गाना उसे रूपमती के लिये उत्कंठित बना देता है और इसी समय शुजाउल्लपुर से आये आलमखान और बाज बहादुर के पत्र का कथोपकथन एक ओर रूपमती को मांडव आने के आमंत्रण में परिणत होता है, तो दूसरी ओर अकबर बादशाह की मालव की सुल्तानी पर कड़ी नजर का संदेश प्रस्तुत करता है। इसके उपरांत मांडव में महमदखान और बाज बहादुर का कथोपकथन मालव पर अकबर के आक्रमण की सूचना द्वारा बाज और रूपमती के वियोग का कारण बनता है एवं युद्ध के लिए प्रस्थान पूर्व सुलेमान और बाज का गुप्त कथोपकथन मांडव के परिस्तान के सर्वनाश के संदेश से युक्त है। इस प्रकार कथोपकथन उपन्यास की आधिकारिक कथा एवं अन्य विविध प्रसंगों की गत्यात्मकता में भी क्रियाशील होता दृष्टिगत होता है।

पात्रों के चारित्रिक उन्मेष और विकास में भी कथोपकथन का सहयोग प्रशस्य है, जिसका विवेचन हम "चरित्र-चित्रण" के अन्तर्गत प्रस्तुत कर आये हैं। प्रस्तुत उपन्यास के कथोपकथन का विषय-वैविध्य भी अद्भुत आकर्षण से सम्पन्न है। मांडव में हरिणी के हनन पर रूपमती और बाज का कथोपकथन करुणा तथा निर्दोष और निरुपद्रवी प्राणियों पर दया के भावों की अभिव्यक्ति करता है। निकाह के सम्बन्ध में बाज और रूपमती का कथोपकथन निर्बंध प्रेम पूर्ण हृदय के आनंद-निर्झर ; काजी और बाज का कथोपकथन इश्के मिजाजी और इश्के हकीकी, तथा राधा-ललिता के मांडव आने पर रूपमती और बाज का कथोपकथन बाज की राजकीय कर्तव्यपरायणता का आदि के सम्बन्ध में अपना

सम्यक् विचार-दर्शन प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार स्वरूप, उपयोगिता एवं विषय-वैविध्य आदि सभी दृष्टियों से उपन्यास में प्रयुक्त कथोपकथन सर्वथा प्रशस्य है। यथास्थान भावना-प्रधान और विश्लेषणात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। गुनाउलखान द्वारा बाज के गुनाउल पुर लाये जाने और उसके रूपसी के प्रति आसक्ति का आरोप लगाये जाने पर, वह आत्म-केंद्रित होकर रूपी को सम्बोधित कर अपने हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति करता है। इसमें वह रूपी के प्रति अपने हार्दिक आकर्षण की आत्म-स्वीकृति करते हुए भी उसके प्रति अपने प्रेम का अस्तित्व नहीं स्वीकार करता। उसकी यह तर्कशून्य मानसिक स्थिति उसकी भावनाशीलता की परिचायक है। रूपसी को बाज बहादुर की आसक्ति से उबार ने के लिये प्रयत्नशील गोपी को स्वप्न में सुंदरी का उद्बोधन, हृदय के धर्म और उसके तज्जन्य, आनन्द की अनुभूति की दुहाई दे उसे उससे विरत करता है। पराजित बाज के अंगों के बल आदेश की प्रतीति पर बाज को लक्ष्य कर रूपसी के उद्गारों की ~~अभिव्यक्ति~~- अभिव्यक्ति पाठक को अद्भुत भाव प्रवणता और समर्पणशीलता से परिचित करती है। इस प्रकार भावनाप्रधान शैली और विश्लेषणात्मकता का भी पात्रों के चरित्र-चित्रण में सम्यक् उपयोग किया गया है।

कथोपकथन :

रूपसी की कथावस्तु को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करने के लिये लेखक ने मुख्यतया वर्णनाधीन शैली का ही आश्रय लिया है, तथापि इसे सजीव, रोचक और हृदयग्राही बनाने के लिये नाट्यात्मक शैली का भी समुचित प्रयोग किया है। इस दृष्टि से उपन्यास में प्रयुक्त कथोपकथन कृति की पठनीयता में अभिवृद्धि करते हैं। उनका सरल, सरस और संक्षिप्त स्वरूप उनकी

सर्वजन भोग्यता का विधायक है।

कथावस्तु की गतिशीलता में भी कथोपकथन का योगदान समीचीन है। सारंगपुर में प्रवेश करने पर मार्ग में पैरले दूध को देखकर बाज बहादुर और सुलेमान का संवाद रूपी के उपवास के कारण बाज को रूपमती के प्रति संवेदनशील बना देता है। यदुनाथ और बाजिदखान का

वातावरण :

सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध राजनीतिक दृष्टि से राज्यों के लिये एक संघर्षमय युग था। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने इस परिस्थिति का सम्यक् चित्रण किया है। प्रथमतः यह स्थिति शुजाअत खान की मृत्यु पर जब बाजिदखान अपने बड़े भाई दौलतखान को ही ताज का अधिकारी बनाना चाहता है, तब आती है। बाजिदखान के श्वसुर, हाजिफखान की इच्छा थी कि यदि बाजिद खान से सल्तनत नहीं छीनी जाती, तो वह स्वयं सुलतान बन जाय। अतः सैन्य शुजाउल्पुर आने वाले दौलतखान को बाजिदखान संघर्ष टालने के लिए हाफिजखान द्वारा अपने पास लिवाना चाहता है, किन्तु हाफिजखान उसे लाने की अपेक्षा उसका सिर काट लाता है। इस घटना से क्रुद्ध बाजिदखान तुरंत उसका वध कर स्वयं सुलतान पद ग्रहण कर लेता है। दूसरे, यह स्थिति उपन्यास के उत्तरार्द्ध में आती है। अकबर दिल्ली के सिंहासन पर आते ही युद्ध-परंपरा आरम्भ कर देता है। मालवा भी इसका शिकार होता है। अदहमखान के नेतृत्व में अकबर की फौजों का सारंगपुर पर आक्रमण और बाज की सेवा के पराभव पर अदहमखान द्वारा सारंगपुर की लूट और मुसलमानों तक के कत्ल, इनके समाचार से विक्षुब्ध अकबर का सारंगपुर तक आना, उसके भय से अदहमखान के सिपाहियों द्वारा बंदी राधा-ललिता की गुप्त हत्या, आदि घटनाएं

तत्कालीन युद्धों की भीषणता का जीवंत चित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती हैं।

समाज में वर्ण-व्यवस्था, स्पृश्यास्पृश्यता की भावना, एवं धार्मिक रूढ़िवादिता विद्यमान थी। रूपी द्वारा कीर्तन में देववस्त्रों के उपयोग के कारण भ्रष्ट मंदिर का पचीस मन दूध से धुलवाना तत्कालीन सामाजिकों की धार्मिक रूढ़िवादिता का परिचायक है। गुसाईं नंददास और मथुराम एक मत के अनुयायी थे, किन्तु भोजन-व्यवहार में उनमें भी स्पृश्यास्पृश्य की भावना विद्यमान थी। इसका चित्रण लेखक ने जब दोनों गुसाईं सारंगपुर और मथुरा में मिलते हैं और कुछ समय साथ रहते हैं, उन स्थितियों में किया है। रूपमती के बाज बहादुर के यहां रहने पर तो सारंगपुर का सारा समाज मथुराय को अपनी टीकाओं से इतना विचलित-सा कर देता है कि वह विषपानकर जीवन का अंत करने को बाध्य हो जाता है।

तत्युगीन धर्म और समाज में संगीत का बड़ा महत्त्व था। मंदिरों में कीर्तन, और वैयक्तिक गोष्ठियों में कण्ठ्य और वाद्य संगीत का प्रचलन था। प्रस्तुत उपन्यास में संगीत का अस्तित्व और प्रभाव आद्योपान्त विद्यमान है। आरंभ में संगीत गोष्ठियों में बाज का रूपी के साथ प्रेम, मांडू में संगीत के साथ उसका उत्तरोत्तर विकास, एवं संगीत के साथ ही रूपमती के प्राणोत्सर्ग का चित्रण बहुत ही सजीव और प्रभावशाली बन पड़ा है। इस प्रकार उपन्यास में तत्युगीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ एवं जीवंत रूप में निरूपण हुआ है।

भाषा-शैली :

" रूपमती " में श्री भूमीजल वर्धमान शाह की भाषा का

परिष्कृत और प्रासादिक स्वरूप दृष्टिगत होता है। उनकी भाषा की चित्रात्मक क्षमता उपन्यास में आद्योपान्त प्रस्तुत है। कृति के आरम्भ में श्रावण की वर्षा, मांडव की सुषमा, शुजाउल्लपुर और सारंगपुर के युद्ध आदि के वर्णन में लेखक की भाषा अपनी क्षमता का परिचय देती है। लेखक द्वारा प्रयुक्त नाट्यात्मक शैली का विवेचन, हम " चरित्र-चित्रण " और " कथोपकथन " के अन्तर्गत प्रस्तुत कर आये हैं। इसके अतिरिक्त उपन्यास में रूपमती के बाज के सम्मुख " मने चाकर राखोजी " तथा " गोरटी अहीर की बेटी ऐसी राधा गोरटी " आदि गीतों के प्रभाव के भावात्मक निरूपण में, मांडव पहुंचने पर " मुख देखन को आई " गीत के सुनने पर बाज की आह्लादकता का चित्रण करने में तथा हिरणी के हनन पर " शाने मार्यो तीर, भाई तीरंदाज रे " गीत के हृदय स्पर्शी और करुणापूर्ण वातावरण के निरूपण में लेखक की काव्यात्मक एवं भावना-प्रधान शैली की क्षमता दर्शनीय है। रूपमती की मुग्धता से बाज मौका की स्थिति के निरूपण में लेखक की भाषाकीय कलात्मकता भाषा पर उसके सामर्थ्य की परिचायक है।

इन गुणों के साथ ही उपन्यास में श्री शाह की कुछ एक काव्य-प्रयोग एवं कथोपकथन सम्बन्धी त्रुटियां भी दृष्टिगत होती हैं। श्री सुन्दरम् का एतद्विषयक कथन वास्तव में मननीय है - " रूपमती कविप्रिय कवियित्री थी। उसके मुंह में रखी कविताएं खास करके कई भजन, बहुत प्रभावशाली रूप में अलग अलग प्रसंगों पर आते हैं। परंतु कुछ एक दोहे तथा हिरणी के शिकार के बाद का विलापगीत उत्तम कृति नहीं बने। "[1] यहां काव्य जैसा समीक्षक ने

---

1 श्री सुन्दरम्, गुजरात साहित्य सभा, १९४१-४२, पृ० ७२

उपन्यास में प्रयुक्त काव्य के प्रशस्य और दुर्बल दोनों अंगों की ओर अंगुलि निर्देश कर दिया है। कथोपकथन आदि के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है - " कई प्रसंगों पर आलेखन शिथिल है, संवाद अधिक तर्क पूर्ण हो जाते हैं, विशेष कर के रूपमती और अदहम खान के मध्य का संवाद ऐसे तीव्र वातावरण में उचित और आवश्यक नहीं लगता। " [1] मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सुधी समीक्षक का प्रस्तुत मन्तव्य निर्विवाद रूप से तथ्यपूर्ण है।

उद्देश्य और जीवन दर्शन :

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक का मुख्य उद्देश्य रूपमती और बाज बहादुर की प्रणयकथा की कलात्मक अभिव्यक्ति है। उपन्यास की " प्रस्तावना " में इससे पूर्व साहित्यकारों के किये प्रयत्नों का उल्लेख करते हुए लेखक ने लिखा है कि " इस प्रकार एकत्रित की हुई सामग्री के आधार पर यह उपन्यास लिखा गया है। " [2] रूपमती और बाज बहादुर के ऐतिहासिक व्यक्तित्व का तत्कालीन वातावरण की पृष्ठभूमि में सम्यक् आलेखन लेखक का लक्ष्य रहा है और तदनुरूप विविध प्रसंगों की संयोजना द्वारा वह उसमें सर्वथा सफल रहा है। रूपमती की प्रणय गाथा की अभिव्यक्ति के सहारे लेखक सूफी दर्शन के आधार पर " इश्के मिजाजी " और " इश्के हकीकी " का भी विवेचन प्रस्तुत करता है। रूपमती के हृदय में इश्के हकीकी का अस्तित्व उसे जाति-धर्म के बंधनों से इतना ऊपर उठा देता है कि काजी, बाज और सुलेमान सब उसके सम्मुख नतमस्तक हो जाते हैं। यहीं लेखक की उद्देश्य विषयक सफलता अपनी चरम सीमा को प्राप्त करती

१ श्री सुन्दरम्, गुजरात साहित्य सभा, १९४१-४२, पृ० ७२

२ श्री झवेरीलाल वर्मान शाह, रूपमती, पृ० ७

है।

पूर्ववर्ती विवेचन के अन्तर्गत श्री चुनीलाल वर्धमान शाह के "कर्मयोगी रानेश्वर" "राजहत्या" और "रूपसती" का जो अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, उसके आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यत्र-तत्र कथा की गतिशीलता अथवा उसकी स्वाभाविकता को कहीं रिक्तता की पूर्ति के लिये कतिपय काल्पनिक प्रसंगों की सृष्टि की गई है। हम यह निर्दिष्ट कर चुके हैं कि ये प्रसंग सर्वत्र इतिहास के अनुरूप ही हैं। दूसरे, उनका परिणाम इतना अधिक नहीं है कि जिससे इन्हें विशुद्ध उपन्यासों की कोटि में न रखा जा सके। वस्तुतः उपन्यासकार ने इतिहास के खाली पृष्ठों को भरकर सम्बद्ध काल को सफल बनाने का ही प्रयत्न किया है। श्री चुनीलाल वर्धमान शाह के उपन्यासों में, श्री वर्माजी की अपेक्षा, कथानक का गुण सर्वत्र विद्यमान है तीसरी उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इनमें पात्र और घटनाओं का आवश्यकता से अधिक समावेश करके न तो कथावस्तु को जटिल बनाया गया है और न उससे चरित्र-सृष्टि को विशृंखलित ही, जैसा कि हम "माधवजी सिंधिया" में पाते हैं। अतः औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से हम उपन्यासकार श्री चुनीलाल वर्धमान शाह को एक सफल उपन्यासकार के रूप में पाते हैं।

श्री चुनीलाल वर्धमान शाह ऐतिहासिक खोज के चक्कर में नहीं पड़े। इतिहास-प्रसिद्ध घटनाओं को कहीं कहीं जनश्रुति से प्राप्त और वह भी अत्यधिक लोक-प्रसिद्ध होने की स्थिति में ही तथ्यों और घटनाओं को समाविष्ट किया गया है। समस्त उपन्यासों में उनका इतिहास-खोजी रूप इस प्रकार नहीं मिलता जैसा श्री वर्माजी में मिलता है। ऐतिहासिक उपन्यासकार का इतिहास-खोजी रूप उसकी अतिरिक्त विशेषता कही जायगी और यह गुजराती के

उपन्यासों में निश्चय ही दृष्टिगोचर नहीं होती । अतः समग्रतया विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि सफल ऐतिहासिक उपन्यासों की गुणवत्ता इन तीनों उपन्यासों में विद्यमान है ।

राष्ट्रीय चेतना जो वृन्दावनलाल वर्मा को कभी ऐतिहासिक खोज, तो कभी तथ्यों को उक्त चेतना के प्रकाश में देखने के लिये विवश करती रही है, ऐसी कोई भी प्रवृत्ति श्री चुनीलाल वर्धमान शाह में विद्यमान नहीं । श्री मुंशी की भाँति प्रादेशिक गौरव मात्र की वृत्ति से भी वे आक्रान्त नहीं दिखाई देते । ऐसा प्रतीत होता है कि कथानक के चुनाव में उनकी निजी रुचि और पाठकों की अभिरुचि की ओर ध्यान, ये दो बातें ही अधिक क्रियाशील रही हैं । ऐतिहासिक प्रेम-प्रसंगों का चयन संभवतः उनकी इस विशेषता को इंगित करता है । अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि इन उपन्यासों में श्री शाह की साहित्यिक चेतना ही अधिक मुखर है ।

तुलनात्मक विश्लेषण :

प्रस्तुत अध्याय में अभीष्ट विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों का अध्ययन कर लेने पर तुलनात्मक निष्कर्ष की दृष्टि से निम्नांकित तथ्य प्रकाश में आते हैं —

(१) विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास के लेखन में हिन्दी में श्री वृन्दावनलाल वर्मा एवं गुजराती में श्री चुनीलाल वर्धमान शाह ही उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं । अपने ऐतिहासिक उपन्यास लेखन में श्री वर्मा जी ऐतिहासिक उपन्यासों के परिचय में उनकी ऐतिहासिकता सम्बन्धी अपने अन्वेषण और उसके आधारभूत ग्रन्थों का संदर्भ भी देते हैं । उनके अन्वेषण और ऐतिहासिक तथ्यों

२६ सम्बन्धी उनकी शोध कई स्थानों पर इतिहास के अज्ञात तथ्यों को भी प्रकाशित करती है, जिसे प्रसंगानुसार निर्दिष्ट किया जा चुका है। श्री कुंजीलाल वर्धमान शाह अपने उपन्यासों में उनकी घटनाओं और पात्रों के ऐतिहासिक होने का कथन अवश्य करते हैं, किन्तु उनके ऐतिहासिक आधार का निर्देश नहीं करते। " कर्मयोगी राजेश्वर " में श्री शाह द्वारा दसवीं शताब्दी में की गई राष्ट्र धर्म की परिकल्पना भी संगत नहीं कही जा सकती। श्री वृन्दावनलाल वर्मा की सी ऐतिहासिक खोज की प्रवृत्ति उनमें नहीं दिखाई पड़ती। अतः वे इतिहास-प्रसिद्ध तथ्यों को लेकर यथावश्य कल्पना के योग से सामग्री को प्रस्तुत करते हैं।

(२) इस वर्ग के हिन्दी और गुजराती के उपन्यासों में से "अहिल्याबाई " को छोड़कर शेष में ऐतिहासिक कथावस्तु के साथ कल्पना-प्रसूत प्रणय-गाथाएं विद्यमान हैं। प्रस्तुत अध्याय में " ऐतिहासिकता " के अन्तर्गत दिये तथ्यों के अनुसार इन प्रासंगिक कथाओं में, कहीं पूर्णतया ऐतिहासिक पात्र हैं, तो कहीं ऐतिहासिक पात्रों के साथ कल्पना-प्रसूत पात्र भी। ये प्रासंगिक कथाएं इतिहास-मूलक कल्पना पर आश्रित हैं। कहीं वे पात्रों के चारित्रिक विकास में सहायक हैं, तो कहीं युगीन परिस्थितियों के निरूपण में। पात्रों के सर्जन के मूल में भी यही लक्ष्य दृष्टिगत होता है।

(३) रचना के उद्देश्य की दृष्टि से इन उपन्यासों में एक वैविध्य दृष्टिगत होता है। हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में राष्ट्रीय गौरव सम्पन्न व्यक्तियों का चरित्र-चित्रण है। गुजराती उपन्यासों में इतिहास के मार्मिक एवं सशक्त जीवन-चित्रों का प्रस्तुतीकरण हुआ है। कर्मयोगी राजेश्वर का मूलराज एक कर्मयोगी प्रजावत्सल राजा के रूप में चित्रित है, " राजहत्या " पाटण की प्रजा की अपने स्वत्व के प्रति जागरूकता एवं उसकी रक्षा के लिये

२७ उत्सर्ग होने की सम्भावना व्यक्त करता है, जब " रूपमती " एक ऐतिहासिक प्रणय-गाथा है। अतः यह कहा जा सकता है कि ये उपन्यास लोकविश्रुत कथानकों को औपन्यासिक शिल्प के साथ उपस्थित करने के उद्देश्य से लिखे गये हैं।

(४) आदर्श की दृष्टि से " अहिल्याबाई " के अतिरिक्त प्रस्तुत वर्ग के हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का दृष्टिकोण राष्ट्रव्यापी है। गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यास " प्रदेश " अथवा व्यक्ति विशेष तक सीमित हैं।

(५) हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में श्री वर्माजी ने ऐतिहासिक परिस्थितियों के विवरण पर्याप्त मात्रा में प्रस्तुत किये हैं, किन्तु उनसे प्रभावशाली वातावरण की सृष्टि नहीं हुई है। लेखक परिस्थितियों के विवरण द्वारा पाठक पर हावी अवश्य हो जाना चाहता है, किन्तु यह वातावरण के शिल्प में सहायक नहीं होता। गुजराती के उपन्यासों में शिल्प की दृष्टि से वातावरण सफलता उभर कर पाठक के सामने प्रभावशाली रूप में आता है।

(६) वस्तु-संगठन, चरित्र-चित्रण तथा साथ ही वातावरण की सृष्टि के दृष्टिकोण से इस वर्ग के हिन्दी के उपन्यासों में से केवल " झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई " का ही शिल्प प्रभावशाली एवं सफल है। शेष दोनों उपन्यासों में घटना-संकुलता तथा सामान्य ऐतिहासिक विवरणों के कारण शिथिलता एवं नीरसता का दोष यत्र-तत्र आ गया है। विशेषकर " माधवजी सिन्धिया " में कथानक का बिखराव शिल्पगत सौन्दर्य को नष्ट कर देता है। इस दृष्टिकोण से श्री चुनीलाल वर्धमान शाह के तीनों उपन्यास पूर्णतया सफल हैं। कथानक की रोचकता, गतिशीलता, समीचीन वातावरण की सृष्टि, पात्रों के प्रभावपूर्ण कथोपकथन तथा घटनाओं के घात-प्रतिघातों की योजना द्वारा चरित्र-सृष्टि की

समीक्षा उनमें सर्वत्र विद्यमान है ।

अतः औपन्यासिक शिल्प के दृष्टिकोण से गुजराती के विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास निश्चय ही श्रेष्ठतर कहे जा सकते हैं ।

(७) संक्षेप में, प्रस्तुत अध्याय के उपन्यासों में इतिहास और शिल्पगत साम्य और वैषम्य निम्नांकित रूप में दिखाई देते हैं-

(अ) साम्य :

(क) हिन्दी और गुजराती के उपन्यासों में ऐतिहासिक कथावस्तु और पात्रों के सम्बन्ध में कल्पना का प्रयोग इतिहासमूलक है,

(ख) इनमें अतीत के गौरवास्पद व्यक्तियों का चरित्र चित्रण है, तथा

(ग) ऐतिहासिक तथ्यों के साथ स्वच्छंदता का प्रयोग दृष्टिगत होता है ।

(आ) वैषम्य :

(क) हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में उद्देश्य की व्यापकता है, वे राष्ट्रीयता की भावना से युक्त हैं । गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रदेश विशेष के गौरव से सम्बद्ध आदर्श व्यक्तियों का चित्रण हुआ है ।

(ख) हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में कथावस्तु के संयोजन में एकरूपता का अभाव है । इसके विपरीत गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासों का गठन सुनियोजित है ।

२९ (ग) हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में वातावरण का निरूपण इतना सशक्त नहीं है, जबकि गुजराती के उपन्यासों में वह अपनी समग्रता के साथ प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत है ।

प्रस्तुत अध्याय में विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों का अध्ययन प्रस्तुत करने के बाद आगामी अध्याय में पूर्व निर्दिष्ट वर्गीकरण के अनुसार समन्वयात्मक ऐतिहासिक उपन्यासों का अध्ययन अपेक्षित है ।

००००००